चन्दामामा
मई १९६१

ENERGY FOOD

चन्दामामा

मई १९६१

रोमांचकारी

अत्यधिक...

असाधारण

न्यायालय के

नाटकीय दृश्य...

कानून की नज़र में
ये सब हत्यारे हैं,
पर एक ही ने
खून किया है...

अशोककुमार, राजेन्द्रकुमार, नन्दा, जीवन, शशिकला,
नाना पल्सीकर, मनमोहन कृष्ण और महमूद

कानून

निर्माता और निर्देशक : बी. आर. चोपरा

कथा : सी. जे. पावरी
सम्भाषण : अख्तुर-उल-इमान
फोटोग्राफी : एम. एन. मलहोत्रा
संगीत : सलिल चौधरी

सम्पादन : प्राण मेहरा
कला : सन्तसिंग

बेले नृत्य : वेरा बोचरोवा माधुरी और गोपीकृष्ण

समस्त भारत में भरे हालों में दिखाया जा रहा है !

अब चाहे जितना
रावलगाँव
लॅको बॉन बॉन
अब आपकी पसन्दगी का रावलगाँव लॅको-बॉन-बॉन चाहे जितना मिल सकता है। रावलगाँव लॅको-बॉन-बॉन की जोड़ हो ही नहीं सकती। इसीलिये खरीदते समय 'रावलगाँव' यह नाम देखकर लें।
Ravalgaon
सैलिंग एजन्टस्:
मे. मोतीलाल गिरधारीलाल आपारकर
मालेगांव-जि. नासिक

मई १९६१

'चन्दामामा' के कथा-कहानी रूपी शरीर में प्राण प्रवाहित करनेवाले इसके चित्रों व धारावाहिकों को देखकर किसी भी पाठक का मन इसे पूरा पढ़े बिना नहीं मानता। मैं पिछले कई वर्षों से 'विचित्र जुड़वाँ', 'रत्न-मुकुट', से लेकर 'अग्निद्वीप', 'लकड़ी का घोड़ा' तक के धारावाहिक नियमित रूप से पढ़ता चला आ रहा हूँ, पर मन कभी भी नहीं अघाया। निश्चय ही, चन्दामामा व्यवस्थापक ऐसी सुन्दर-स्वस्थ पत्रिका के लिए प्रशंसा के पात्र हैं। मैं इस बहुभाषी पत्रिका के निर्माण के लिए उन्हें तथा उनके सहयोगियों को बारम्बार साधुवाद देता हूँ।

रत्नकुमार वर्मा, सोनीपत

मैंने 'चन्दामामा' की पत्रिका पढ़ी। लेकिन ऐसी पत्रिका पढ़कर जो आनन्द हुआ, दूसरी पत्रिका में पढ़कर नहीं हुआ। अतः इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही होगी।

विश्वनाथ दोदराज, निमडी

मैं 'चन्दामामा' को लगातार ६ वर्ष से पढ़ रहा हूँ। मेरे विचार में यह बच्चों के लिए बहुत अच्छी पत्रिका है। मेरा छोटा भाई स्कूल में पढ़ने नहीं जाता था। परन्तु अब वह चन्दामामा के पढ़ने के चाव के मारे स्कूल जाने लग गया है। आज उसकी उम्र १५ साल है और जब से घर में 'चन्दामामा' का प्रवेश हुआ है तब से वह बड़े चाव से पढ़ता है। अतः लोगों का कहना सच है कि 'चन्दामामा' बच्चों की मनलुभावक पत्रिका है।

प्रभात कुमार माहेश्वरी, कासगंज

मैं सिंधी हूं और आठ मासिक पत्रिकाओं का नियमित ग्राहक हूं आप की चन्दामामा जैसी कोई पत्रिका नहीं ला जवाब है। मैं १९५२ से चन्दामामा का एक ग्राहक हूं। कभी कभी आप की पत्रिका देरी से पहूँचती है तो मन उदास हो जाता है किन्तु हाथ में चन्दामामा आते मनमयूर नाच नचाता है।

डॉ. गुल गुरुमुख, बान्टेवा.

मेरे लिए तो यह काफ़ी प्रिय पत्रिका है। काश! आप इसे दैनिक कर पाते!

अशोक कुमार सिंह, पटना-३

'चन्दामामा' एक अति उत्तम मासिक पत्रिका है। बालकों के लिए यह एक ऐसा सुंदर उपहार है जो उनके मन पर अमित प्रभाव डालता है। उनके मन में ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित करता है। केवल बालकों को ही नहीं, 'चन्दामामा' वयस्कों को भी मनोरंजन प्रदान करता है।

विनोद कुमार जैन, देहली

'चन्दामामा' में उपदेश पूर्ण कहानियाँ और हर पृष्ठ पर सुन्दर रंगीन चित्र होते हैं। यही कारण है कि आज भारत के अधिकांश बच्चे इसे चाव से पढ़ते हैं।

विवेकानन्द मिश्र, दुमका

मैं 'चन्दामामा' को बड़े चाव से पढ़ता हूँ। न जाने क्यों इसमें ऐसी क्या विशेषता है कि इसे छोड़ने को मन ही नहीं चाहता!

ओमप्रकाश 'पाशी',
अम्बाला कैन्ट

कोलगेट से दिनभर दुर्गंधमय श्वास से मुक्त रहिए और दन्त-क्षय को रोकिए !

अधिक साफ़ निर्मल श्वास व सफ़ेद दांत के लिए ... सारी दुनिया में अधिकाधिक लोग किसी दूसरी डेन्टल क्रीम की अपेक्षा कोलगेट ही खरीदते हैं

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

जब से हमने "प्रश्नोत्तर" का स्तम्भ खोला है, बहुत से प्रश्नकर्ता यह पूछते आये हैं—"क्या हमें 'चन्दामामा' की पुरानी प्रतियाँ मिल सकती हैं?" इसके उत्तर में हमने एक दो बार लिखा भी है कि पुरानी प्रतियाँ भेजना हमारे लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारे पास वे नहीं हैं। जितनी प्रतियाँ छपती हैं, वे खप भी जाती हैं। कई को निराश होना पड़ता है। हमें इसका अफ़सोस है। मगर इस समस्या का एक तरह हल हो सकता है, यदि आप वार्षिक ग्राहक बनेंगे तो न आपको, न आपके मित्रों को ही "चन्दामामा" के न मिलने की शिकायत रहेगी।

वर्ष: १२ मई १९६१ अंक: ९

पत्नी के अनुरूप पति

एक गाँव में सूरजसिंह और रामप्यारी नाम के पति-पत्नी रहा करते थे। सूरजसिंह रोज सवेरे खेत चला जाता और शाम घर आया करता। रामप्यारी घर में रहती और घर और अपनी मुरगियों की देखभाल किया करती। उसे मुरगी पालने का बड़ा शौक था। इसलिए गाँववाले मुरगियों के बच्चों को उसके पास पालने के लिए छोड़ जाते और जब वे बड़े हो जाते, एक दो उसे देकर अपनी मुरगियाँ ले जाते। इस तरह हमेशा रामप्यारी के पास पचीस-तीस मुरगियाँ रहतीं।

सुरजसिंह को मुरगी का माँस बड़ा प्यारा था। उसने पत्नी से कई बार मुरगी काटकर सालन बनाने के लिए कहा। परन्तु वह बनाने के लिए न मानी।

बहुत सोचने के बाद सूरजसिंह ने एक चाल सोची। उसने एक दिन पत्नी से कहा—"प्यारी, कल मुझे एक स्वामी दिखाई दिये। हमारे खेत में आजकल ठीक उपज नहीं न हो रही है। मैंने पूछा कि इसका क्या कारण था। उन्होंने बताया कि गाँव के सिरे पर जो पीपल का पेड़ है, उसके एक खोल में, उत्पत्ति का देवता है। इसलिए रोज उसमें मुरगी का माँस रखकर, बिना पीछे देखे, चले आना होगा। यदि हमने यों एक महीने तक किया, तो उत्पत्ति का देवता सन्तुष्ट होकर, हमारे खेत में अच्छी उपज देगा।"

यह सुन पहिले तो रामप्यारी घबराई। फिर यह सोचकर कि खेत ठीक हो जायेंगे, उसने अपने मन को ढ़ाढ़स दिया और जैसा पति ने कहा था, वैसा करने के लिए वह मान गई।

उस दिन से रामप्यारी रोज एक मुरगी काटती। मसाला बनाती, पकाकर रोटी के साथ ले जाती और पीपल के खोल में रखकर, बिना पीछे देखे घर आ जाती। रामप्यारी के चले जाते ही सूरजसिंह पेड़ से उतरता, खोल में से पोटली लेकर खुशी खुशी मुरगी का माँस खाता।

एक महीना बीत गया। रामप्यारी ने आखिरी मुरगी भी हलाल कर दी। परन्तु उत्पत्ति के देवता की कृपा कहीं न दिखाई दी। ज़रूर इस देवता में कोई बात है, रामप्यारी को सन्देह हुआ।

इसलिए उस दिन रोज की तरह उसने पीपल के खोल में मुरगी का माँस रख, बिना पीछे देखे आने के बदले, कुछ दूर बाद, वह एक पेड़ के पीछे छुप गई और देखने लगी कि क्या होता है।

तब क्या था! वह देखती है कि सूरजसिंह पीपल पर से उतरा और भोजन लेकर खाने लगा।

वह आग-बबूला हो उठी। वह जल्दी-जल्दी उसके पास गई। जब तक उसके हाथ दुखने न लगे वह पति के पीठ पर मारती रही। "अब मैं इस पति

से गृहस्थी नहीं कर सकती!" कहकर वह उबलती घर चली गई।

उसने मायके जाने का निश्चय किया। बोरिया बिस्तर एक टोकरे में रखकर, आसपास के लोगों से विदा लेने गई।

पत्नी के पीछे-पीछे सूरजसिंह भी घर आया। वह जान गया कि पत्नी क्या करने जा रही थी। वह उस टोकरे में जाकर बैठ गया, जिसे उसकी पत्नी ले जाने की सोच रही थी।

रामप्यारी को भेजने के लिए अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ आईं। उसने अपना घर एक बार देखा। फिर फूट पड़ी, रोने लगी, उसके बाद टोकरा उठवाकर, वह मायके चली गई।

मायके पहुँचते ही माँ के सामने रो धोकर, रामप्यारी ने सब बताया कि कैसे उसके पति ने उसे धोखा दिया था।

माँ ने रामप्यारी को समझाते हुए कहा—"रहने भी दो बेटी, जो हो गया, सो हो गया, अब तुम उस आदमी को देखना ही मत। यहीं रह जाओ।"

जब उसने यह देखने के लिए कि उसकी लड़की टोकरे में क्या लाई थी, टोकरी खोली तो उसमें से सूरजसिंह ने बाहर कूदकर कहा—"मैं हूँ, मैं तुम्हारा जमाई।"

यह देख सास को बड़ा गुस्सा आया। यह सोचकर कि उसके घर बैठे-बैठे रोटी फाड़ने के लिए, पति-पत्नी ने यह चाल चली थी, उसने उन दोनों को बाहर भिजवा दिया और कहा कि वे उसके घर कभी न आयें।

रामप्यारी ने सोचा कि और कुछ किया न जा सकता था। उसने पति के साथ ही गृहस्थी करने के ठानी और उसके साथ अपने घर चली गई।

स्यमंतकमणि

चतुर्थ अध्याय

गुफाद्वार तो सँकरा था, पर
भीतर था काफी विस्तार,
टो-टोकरके कृष्ण उठाते
गये कदम निज बारम्बार।

अंधकार कुछ घटा बाद में
दिखी ज्योति की आभा क्षीण,
आगे कुछ फिर बढ़े और तो
दिखा दृश्य ही एक नवीन।

अंतःपुर ही था वह पूरा
सजे हुए घर औ' द्वार,
झूला एक लगा था जिसमें
झूल रहा था शिशु सुकुमार।

हिला रही थी उस झूले को
लोरी गाती तरुणी एक,
"सोजा मेरे राजा भैया
सोजा ही अब तो तू नेक!"

उस झूले के ही ऊपर वह
मणि आभामय लटक रहा था,
और उसे ही तन्मय होकर
नन्हा शिशु वह निरख रहा था।

कृष्ण चकित औ' मोहित होकर
गये उधर को जब चुपचाप,
तरुणी चीखी उन्हें देखकर
सहसा—"अरे बाप रे बाप!"

सुनकर उसकी चीख तुरत ही
निकला यों भालू तत्काल,
मानों धरकर रूप भयानक
आया हो सचमुच ही काल।

झपट पड़ा वह तुरत कृष्ण पर
नाखूनों से किया प्रहार,
किंतु कृष्ण भी डरे न उससे
दी कसकर घूँसों की मार।

"यात्रिक"

गुत्थमगुत्थी उन दोनों में
रही वहाँ चलती अविराम,
किंतु न हारा उनमें कोई
निकल न पाया कुछ परिणाम।

साथी खड़े गुफा के बाहर
रहे जोहते बाट अधीर,
बीत गये दस दिवस इसीमें
चले लौट आखिर वे वीर।

कृष्ण नहीं अब तो जीवित हैं
ऐसा था उनका अनुमान,
शोक और चिंताओं से वे
लगते थे बिलकुल ही म्लान।

कहा उन्होंने जाकर सबसे
गुजरा जो था उसका हाल,
हुए दुखी सब मथुरावासी
हाहाकार मचा तत्कार।

रुक्मणी की आँखों से थी
थमती नहीं अश्रु की धार,
कहाँ गये मनमोहन प्यारे—
रोते थे सब हो बेज़ार।

दुर्गा के मंदिर में जाकर
रुक्मणी बहुत ही रोयी—
'हाय, अर्थ, क्या जीने का अब
जीवन-निधि ही मैंने खोयी!'

किंतु सुनायी पड़ा उसी क्षण—
"बेटी, तेरा अचल सुहाग।
कृष्ण शीघ्र ही घर लौटेंगे
चिंता सब जाएगी भाग।"

इधर कृष्ण औ' भालू दोनों
करते युद्ध रहे अविराम,
बीत गये इक्कीस दिवस यों
लिया नहीं क्षण-भर विश्राम।

धीरे धीरे भालू की ही
शक्ति हुई रण में अति क्षीण,
गिरा वही आखिर में भूपर
हो क्लांत औ' अति ही दीन।

बोला वह तब हाथ जोड़कर—
"आप न नर हैं, नारायण हैं,
वेदों में वर्णित जिसके ही
यश का करते मुनि गायन है।

शक्ति नहीं साधारण मेरी
जीत न सकता कोई नर है,
काँपा करती मेरे भय से
दशो दिशायें भी थर्-थर हैं।

त्रेतायुग में मैं अनुचर था
प्रभु थे मेरे राघवराम,
उनका ही यश मैं नित गाता
जामवंत है मेरा नाम।

मेरी सेवा से खुश होकर
और कामना उर की जान,
दर्शन द्वापर में देने का
दिया उन्होंने था वरदान।

सत्य हुआ है वही आज तो
मुझको है विश्वास प्रभो!
आप राम हैं, प्रभु मेरे हैं
पूरी की सब आस प्रभो।"

रूप राम का ही तब सहसा
किया कृष्ण ने धारण शीघ्र,
और लगे सहलाने उसको
जिससे मिटी थकावट शीघ्र।

जामवंत ने गद्गद होकर
कहा—"हुआ मैं आज सनाथ,
मेरी जो प्यारी पुत्री यह
पकड़े इसका भी अब हाथ।"

पुत्री का कर ब्याह कृष्ण से
मणि दहेज में उन्हें दिया,
और चरणरज सिर पर रखकर
विदा अंत में उन्हें किया।

कृष्ण चले तब मथुरानगरी
प्रिया जामवंती के संग,
उन्हें देखकर पुरवासी सब
फूले नहीं समाये अंग।

'कृष्ण आ गये, कृष्ण आ गये!'
'मुरलीधर घनश्याम आ गये!'
कहने लगे परस्पर वे सब—
'देखो नटवर श्याम आ गये!'

रुक्मणी का नाच उठा मन—
'प्यारे मोहन आ गये!'
वसुदेव पिता की आँखों में
अश्रु खुशी के छा गये।

रुक्मणि ने स्वर्ण थाल में
शीघ्र सजाई आरती,
और श्याम का स्वागत करके
वहीं उतारी आरती।

मिली जामवंती से भी वह
बहुत बहुत ही प्यार से,
लिवा गयी अंतःपुर उसको
बहुत जतन से, प्यार से!

[१६]

[उग्रदत्त और उसके साथी, रुद्र और आरुढ़ को लेकर, शेर का चमड़ा पहिननेवाले अग्निद्वीप के लिए निकले। उनका आकाश में भालू का चमड़ा पहिननेवालों ने मुकाबला किया। उग्रदत्त जिस भयंकर पक्षी पर सवार था, वह एक पहाड़ पर उतरा। भालू का चमड़ा पहिननेवाले उसको साथ लेकर, एक गुफ़ा के बीच में से जाने लगे। उसके बाद]

भालू का चमड़ा पहिननेवालों का गुफ़ा का द्वार बन्द करना था कि अन्दर गाढ़ अन्धकार हो गया। उग्रदत्त का पैर फिसल पड़ा और वह सामने गिर पड़ा। परन्तु इतने में भालू का चमड़ा पहिननेवाले ने उसका कन्धा पकड़कर कहा—"जल्दी न करो, बीस सीढ़ियों के बाद ही फर्श आता है। यह देखो मशाल।" कहकर उसने भालू के चमड़े में से चमचमाती एक मणि निकाली। इसके बाद उसके साथियों ने भी अपनी मणियाँ निकालीं।

मणियों को देखकर उग्रदत्त बड़ा चकित था। उसे लगा कि इस अग्निद्वीप में शायद, रोशनी करने के लिए न मशालें हैं, न मोम बत्तियाँ ही। बहुमूल्य मणियाँ ही मशाल हैं।

"क्या इस द्वीप में तेल नहीं है! रोशनी के लिए क्या इन मणियों के सिवाय और कुछ नहीं है!" उग्रदत्त ने पूछा।

थी। ऊँचाई कई जगह पाँच फीट और कई जगह दस फीट तक भी थी।

"यह गुफ़ा कहाँ पहुँचती है! मुझे क्या शेर का चमड़ा पहिननेवालों से इसलिए ही बचाया था, ताकि किसी भालू का चमड़ा पहिननेवाले का गुलाम बनाकर मुझे बेच दिया जाय?" उग्रदत्त ने पूछा।

भालू का चमड़ा पहिननेवालों में से एक हँसा। मगर उसे दूसरे ने धमकाया। तीसरे ने उग्रदत्त के मुँह के सामने मणि रखी और उसे देखकर कहा—"अगर हम तुम्हें गुलाम बनाकर बेचना ही चाहते, तो तुम्हारी आँखें बाँधकर जो लाते, ताकि तुम्हें गुफ़ा का रास्ता न मालूम हो। मनुष्यों को दास हम नहीं बनाते, वह काम तो शेर का चमड़ा पहिननेवाले ही करते हैं। फिर भी तुम्हारे देश के सब लोगों पर विश्वास करना ठीक नहीं। तुम्हारे ही लोग, गुलामों को पकड़कर लाने के लिए शेर का चमड़ा पहिननेवालों के सरदार एकपाद की मदद कर रहे हैं। क्या तुम नागवर्मा को जानते हो?"

"हाँ, जानता हूँ।" उग्रदत्त अभी कह भी न पाया था कि एक और भालू का

"तेल! वह क्या चीज़ है? हाँ, हाँ, उसके बारे में मैने यहाँ आये हुए तुम्हारे देश के गुलामों के मुँह सुना है।" भालू का चमड़ा पहिननेवाले ने कहा।

"यह बड़ा विचित्र द्वीप है।" उग्रदत्त ने सोचा। इतने में उसे रुद्र, आरूढ़, सामन्त सुदर्शन की लड़की चन्द्रसेना याद हो आये, वे शेर का चमड़ा पहिननेवालों के द्वारा पकड़े गये थे। उग्रदत्त गुफ़ा के द्वार से बीस सीढ़ियाँ उतर कर, गुफ़ा की तह में पहुँच गया। गुफ़ा कोई खास बड़ी न थी। चौड़ाई एक गज़ से अधिक न

चमड़ा पहिनने‌वाले ने पहिले भालू का चमड़ा पहिननेवाले को झिड़कते हुए कहा—"तुम बहुत बकवास करने लगे हो। इन सब बातों की क्या ज़रूरत थी? हमारे सरदार ने हमें क्या कहकर भेजा था?"

वह भालू का चमड़ा पहिनने‌वाला, जिसने यह सब कहा था, भीगी बिल्ली बनकर रह गया। मणियों को हथेली में रखकर, दो भालू का चमड़ा पहिननेवाले आगे जा रहे थे, उनके बाद उग्रदत्त था। उसके बाद एक और भालू का चमड़ा पहिननेवाला था और सब चुपचाप आगे चलते जाते थे। दो-तीन मिनट इस तरह चलने के बाद, ऐसा लगता था, जैसे गुफ़ा का द्वार बन्द हो गया हो। सामने एक पत्थर-सा दिखाई दिया। आगे जानेवाला भालू का चमड़ा पहिननेवाला वहाँ रुका, पत्थर जहाँ पतला मालूम होता था, वहाँ उसने दूसरी अंगुली से दबाया। पत्थर कुछ हटा। तुरत उसके पीछे से आवाज़ आई "शरये" उसके जवाब में आगे के भालू का चमड़ा पहिनने‌वाले ने कहा "भल्लूक" पत्थर फिर फिर करता खुला। भालू का पहिने बड़ी तलवार हाथ में लिये एक सैनिक ने पत्थर के बगल में से उग्रदत्त की ओर झुक कर देखा। उग्रदत्त जान गया कि शरय और भल्लूक सांकेतिक शब्द थे। उसने यह भी अनुमान किया कि दिन-रात शत्रु भय से वे चिन्तित थे।

"क्या एक ही मिला! बाकी क्या हुए!" सैनिक ने पूछा।

"हम उनके बारे में कुछ नहीं जानते। पर तुमको, जो चमगादड़ की तरह गुफ़ा में रहते हो, इन बातों के जानने की क्या ज़रूरत है?" कहते हुए आगे के भालू

का चमड़ा पहिननेवाला दरवाज़ा पूरा खोलकर आगे गया।

उग्रदत्त भालू का चमड़ा पहिननेवालों के पीछे काफ़ी दूर गया। पर उसका अन्त नज़र न आता था। गुफ़ा में कई जगह ऊपर से रोशनी आ रही थी। कहीं कहीं ऐसा लगता, जैसे दीवारों के पीछे कोई बात कर रहा हो। उग्रदत्त ने सोचा कि भालू का चमड़ा पहिननेवालों का सरदार, शेर का चमड़ा पहिननेवालों के हमलों का मुकाबला न कर पा रहा था। इसलिए ऐसे प्रदेशों में समय काट रहा था। यकायक आगे का भालू चमड़ा पहिननेवाला रुका। उसने हथेली मींच ली, जिसमें उसने मणि रख-रखी थी, फिर उसने उसको ज़मीन पर चार-पाँच बार घुमाया। तुरत ऐसा लगा, जैसे भूमि फूट पड़ी हो, बहुत शोर हुआ। देखते-देखते भालू का चमड़ा पहिननेवाला जहाँ खड़ा था वहाँ भूमि फटी और उसमें से ऐसी रोशनी आई कि आँखें चौंधिया गई।

"यहाँ, इकीस सीढ़ियाँ हैं। खबरदार, पैर फिसला कि नहीं—" एक भालू का चमड़ा पहिननेवाले ने उग्रदत्त को सावधान किया और वह सीढ़ियों पर उतरने लगा। उग्रदत्त के आश्चर्य की सीमा न थी। गुफ़ा के बीच में अथाह गढ़ा-सा था और उसमें इतनी रोशनी कि मानों दिन ही हो।

उग्रदत्त और उसके साथ के लोग सीढ़ियों पर से उतरे। एक समतल प्रदेश में पहुँचे। उस प्रदेश के चारों ओर की दीवारों में इतनी मणियाँ जड़ी गई थीं कि सारी जगह चमचमाती थी। सामने एक बड़ा-सा द्वार था। उसके दरवाज़े बन्द थे। उग्रदत्त के साथ आये हुए भालू का चमड़ा पहिननेवालों में से एक ने पास जाकर

उसको तीन बार मुट्ठियों से खटखटाया। तुरत द्वार खुला। सामने एक उन्नत आसन पर शिरस्त्राण में भालू का कान पहिने, एक डील डौल व्यक्ति बैठा दिखाई दिया।

एक भालू का चमड़ा पहिननेवाले ने उसके कान में जाकर कुछ कहा। आसन पर बैठे व्यक्ति ने उग्रदत्त की ओर नज़र दौड़ाई, सिर घुमाते हुए भालू का चमड़ा पहिननेवाले आदमी से कुछ कहा। तुरत वह उग्रदत्त के पास आया। "वे ही हमारे सरदार कन्ध हैं। उन्होंने तुम्हें पास बुलाने के लिए कहा है।"

उग्रदत्त निर्भय हो, कन्ध के आगे खड़ा हो गया। कन्ध ने उसे गौर से देखकर पूछा—"तुम्हारे साथ कितने और लोगों को शेर का चमड़ा पहिननेवाले उठाकर लाये हैं?"

"चार, उनमें एक स्त्री भी है।" उग्रदत्त ने कहा।

"क्या तुम जानते हो कि वे कहाँ हैं?" कन्ध ने पूछा।

"नहीं।" उग्रदत्त चकित था। कन्ध क्यों उससे इस तरह के प्रश्न पूछ रहा था, इन प्रश्नों के पीछे क्या भेद थे, वह न अनुमान कर सका।

कन्ध ने यह सोच कि उग्रदत्त उसके बारे में ही सोच रहा था मुस्करा कर कहा—"मैं, तुम्हारा मित्र हूँ। तुम्हारे देश से मनुष्य उठाकर लाये जाने के मामले से मेरा कोई वास्ता नहीं है। शेर का चमड़ा पहिननेवाले जितने तुम्हारे शत्रु हैं, उतने ही मेरे हैं। पहाड़ की गुफ़ाओं में, गढ़ों में, मैं और मेरे अनुयायियों को कितना छुप-छुपाकर रहना पड़ रहा है, यह तो तुमने देख ही लिया है। तुम्हारे देश के लिए और हमारे अग्निद्वीप के लिए

जो महामारी की तरह है, वैसे एकपाद का सर्वनाश करने के लिए मैंने और तुम्हारे देश के एक और व्यक्ति ने मिलकर एक बात सोची है। शायद तुम उसे पहिचान सको।" उसने अपने एक आदमी को कुछ संकेत किया।

कन्ध के नौकर ने सरदार के आसन के पीछे एक द्वार खोला। तुरत रुद्र ने हँसते हुए उग्रदत्त के पास आकर प्यार से कहा—"मैंने न सोचा था कि फिर तुम्हें जीते जी देख पाऊँगा, उग्रदत्त।"

उग्रदत्त खुशी से फूला न समाया। उसने पूछा—"रुद्र, आरुद्र कहाँ हैं? चन्द्रसेना का क्या हुआ?"

"दोनों को शेर का चमड़ा पहिननेवालों ने पकड़ लिया है। केवल मैं ही कन्ध के नौकरों द्वारा बचाया गया हूँ।" रुद्र ने उदास स्वर में कहा।

कन्ध ने खड़े होकर उग्रदत्त से कहा—"तुम्हारे बारे में मैंने रुद्र से सब कुछ मालूम कर लिया है। आज हमें एकपाद और उसके गिरोह को नाश करने का अवसर मिला है। हमने और तुम्हारे मित्र रुद्र ने यही सोचा है, तुम्हारे पोषक पिता उग्रदत्त और उसके अनुयायियों को इस द्वीप में लाया जाय और उनकी सहायता से एकपाद के किले को घेरा जाय।"

"आपके पास जो भयंकर पक्षी हैं, क्या वे राक्षसों को ढो सकेंगे?" उग्रदत्त ने पूछा।

"उतने बड़े लोगों को ढोने की शक्ति उनमें नहीं है। तुम्हारे बन्धु-बान्धवों को किश्तियों में ही आना होगा।" कन्ध ने कहा।

"जब मैं कैदी बनाकर लाया जा रहा था, तो मैंने इस द्वीप को इसके समुद्र तट

को और इसके ज्वालामुखी पर्वतों को देखा। ज्वालामुखियों से निकलनेवाले लावे ने समुद्र तट को अग्निमय कर रखा था। ऐसी हालत में किश्तियाँ कैसे किनारे पर लग सकती हैं?" उग्रदत्त ने पूछा।

यह प्रश्न सुनकर कन्ध ने हँसकर, अपने अनुयायियों को अभिमान भरी नज़र से देखते हुए कहा—"मेरे अनुयायियों को समुद्र तट पर कई ऐसे स्थल मालूम हैं, जहाँ बिना अग्नि के खतरे के किश्तियाँ लाई जा सकती हैं। खतरा तो सचमुच एकपाद के किले को घेरने में है। उसके बाद उसके मिलने पर उसको मारने में और खतरा है।"

कन्ध की बातें सुनकर उग्रदत्त को और आश्चर्य हुआ। यह देख, कन्ध उसको अपने पास ले गया। फिर एक गुप्त मार्ग से गुफ़ा में से पहाड़ की चोटी पर ले गया।

"वह देखो, आग की लपटों के बीच में एकपाद का किला दिखाई दे रहा है। चाहे जहाँ से देखो, वह आग की लपटों के बीच में दिखाई देता है। परन्तु सच कहा जाय तो उसके चारों ओर ज्वालामुखी नहीं हैं। वहाँ पहुँचने के लिए एक सुरक्षित मार्ग है। मान लो हमने किला वश में कर भी लिया, पर एकपाद को मारना बहुत उलझी हुई समस्या है।"

"अगर वह हमारे हाथ में आ जाये, तो उसको मारते हुए कितनी देर लगेगी!" उग्रदत्त ने कहा।

"उसके पास एक ऐसी शक्ति है, जिसका कोई जवाब नहीं है। वह यह कि जिसका खून वह देखता है या जो कोई उसका खून देखता है, वह मर कर रहता है।" कन्ध ने कहा। (अभी है)

मिट्टी की गाड़ी

उज्जयनी नगर में चारुदत्त नाम का एक ब्राह्मण युवक रहा करता था। जो कुछ ज़मीन-जायदाद उसे बाप-दादाओं से मिली थी, उसने दान-धर्म में खर्च दी थी। उसकी पत्नी का नाम धूताम्बा था। उसके रोहसेन नाम का एक लड़का भी था। चारुदत्त यद्यपि गरीब हो गया था, तो भी मैत्रेय नाम का मित्र, वर्धमान नाम का सेवक, रदनिका नाम की दासी, उसी के भरोसे जी रहे थे। यही नहीं उस नगर की प्रसिद्ध वेश्या वसन्तसेना भी चारुदत्त को ही चाहती थी, हालाँ कि वह गरीब था।

एक दिन रात को वसन्तसेना अन्धेरे में जब घर जा रही थी, तो राजा के साले शकार ने उसका पीछा किया। वह उससे बचने के लिए चारुदत्त के घर में घुसी। उसने अपने गहने उतारकर चारुदत्त को दिये। उससे यह भी कहा कि वह उन गहनों के लिए ही उसका पीछा कर रहा था। चारुदत्त उसको उसके घर छोड़ आया। उसने ऐसी व्यवस्था की कि दिन में वर्धमान उन आभूषणों की रक्षा करता और रात में मैत्रेय।

चारुदत्त के पैरों को दबाकर संवाहक कभी ज़िन्दगी गुज़र किया करता था। अब वह बेरोजगार था। जुआ खेलता था। जुये में उस पर बहुत कर्ज़ भी हो गया था। जब कर्ज़वालों ने तकाजा किया, तो वह एक उजड़े मन्दिर में जा छुपा और जो कर्ज़वाले उसका पीछा करते हुए आये, वे मन्दिर में शतरंज की पट्टी खोलकर खेलने लगे। जब वे आपस में "ये बाजी मेरी है, ये बाजी मेरी है" कहकर झगड़ने लगे—"नहीं, बाजी मेरी है।" कहता

ने उसको कुछ धन देकर मदनिका को ले जाने के लिए कहा। शर्वीलक के पास पैसा न था। मगर उसने अन्य शस्त्रों के साथ चौर-विद्या का भी अभ्यास किया था। उसने चारुदत्त के घर सेंध लगाई और वसन्तसेना के आभूषण, जिनकी मैत्रेय रक्षा कर रहा था, चुराकर ले गया और उन्हें ले जाकर उसने वसन्तसेना को दे दिये।

चारुदत्त को दुःख हुआ कि जो गहने उसके पास धरोहर में रखे गये थे, वे चोरी चले गये थे। इसलिए उसने मैत्रेय के द्वारा, अपनी पत्नी का रत्नोंवाला हार वसन्तसेना के पास भिजवा दिया। वसन्तसेना जान गई थी कि यह सब शर्वीलक की करतूत थी, पर उसने बाहर कुछ न कहा और उसके साथ उसने मदनिका को भेज दिया। वे जब गाड़ी में जा रहे थे, तो शर्वीलक को मालूम हुआ कि आर्चक नामक व्यक्ति को राजा ने कैद कर लिया था।

संवाहक बाहर निकला। वह वहाँ से भागकर वसन्तसेना के घर में गया। क्योंकि वसन्तसेना जानती थी कि वह कभी चारुदत्त का नौकर था, इसलिए उसने उसका सारा कर्ज़ चुका दिया। इस घटना से संवाहक में परिवर्तन हुआ और वह बौद्ध सन्यासी हो गया।

उज्जयनी में शर्वीलक नाम का एक ब्राह्मण हुआ करता था। वह वसन्तसेना की दासी, मदनिका से प्रेम किया करता था। यह देखने के लिए कि वह मदनिका का पोषण कर सकेगा कि नहीं, वसन्तसेना

आर्चक नाम का ग्वाले का लड़का, शर्वीलक का मित्र था। क्यों कि किसी सिद्धपुरुष ने बताया था कि आर्चक कभी उज्जयनी का राजा होगा इसीलिए उसको कैद में डाल दिया गया था, लोग सोच रहे थे।

यह सुनते ही शर्वीलक गाड़ी पर से उतरा। गाड़ीवाले को मदनिका को एक परिचित गायक के घर छोड़ आने के लिए कहा। आर्यक को छुड़वाने के लिए वह चल पड़ा और उधर वसन्तसेना ने मैत्रेय का दिया हुआ हार लेकर चारुदत्त के घर जाने की ठानी। उसने मैत्रेय से कहला भी भेजा कि वह आ रही थी। क्योंकि वर्षा हो रही थी, इसलिए वह रात को चारुदत्त के घर ही रह गई।

अगले दिन सवेरे ही चारुदत्त उठकर मैत्रेय को लेकर नगर के बाहर अपने उद्यान में गया। उसने अपने नौकर वर्धमान से कहा—"वसन्तसेना को बन्द गाड़ी में बाग में ले आना।"

वसन्तसेना कुछ देर से उठी। जब उसने रत्नोंवाली माला को चारुदत्त की पत्नी को देना चाहा, तो उसने लेने से इनकार कर दिया। उसने कहा—"मेरे लिए पति से बढ़कर भला क्या आभूषण है! जब उन्होंने दे दिया है, तो क्या मैं वापिस लूँगी!"

जब चारुदत्त के लड़के रोहसेन के खेलने के लिए मदनिका ने एक मिट्टी की गाड़ी लाकर दी, तो उसने तोड़कर कहा—"मुझे वैसी ही सोने की गाड़ी चाहिए, जिससे पड़ोस का लड़का खेल रहा है।" वह रोने बिलखने लगा। वसन्तसेना को उस पर तरस आई। उसने अपने कुछ गहने निकलकर कहा—"लो इससे सोने की गाड़ी बनवा लेना।"

थोड़ी देर बाद वर्धमान ने बन्द गाड़ी लाकर वसन्तसेना के पास खबर भिजवाई कि गाड़ी तैयार थी। जवाब मिला कि वसन्तसेना शृंगार कर रही थी और उसके आने में कुछ देर होगी। उसे याद आया कि गाड़ी में गद्दे डालना भूल गया था।

यह सोचता, कि गद्दे डालकर फिर आ आऊँगा, वह वहाँ से चला गया।

चारुदत्त के घर के पास ही गली में रास्ता रोके कुछ गाँव की गाड़ियाँ खड़ी थीं। बात यह थी एक गाड़ी का पहिया ढीला होकर बाहर आ गया था। इतने में वहाँ एक और गाड़ी आई। उसको शकार का नौकर अपने मालिक के पास ले जा रहा था। रास्ते में गाड़ियों को देख शकार के गाड़ीवाले ने अपनी गाड़ी चारुदत्त के घर के सामने खड़ी की, और उस गाड़ीवाले की मदद करने गया, जिसकी गाड़ी का पहिया उतर गया था।

ठीक उसी समय बसन्तसेना दरवाजे के पास गई। वहाँ खाली बन्द गाड़ी देख वह अन्दर जा बैठी। उसने खिड़कियाँ बन्द कर लीं। जल्दी ही गाँव की गाड़ी ठीक हो गई। गली साफ़ होगई। शकार का गाड़ीवाला वापिस आया और वह गाड़ी सीधे शकार के बाग में ले गया।

शर्वीलक क्योंकि चौर विद्या में प्रवीण था, वह जेलखाने में घुस गया। वहाँ के एक कर्मचारी को मारकर, आर्यक को छुड़ा लाया। सैनिक आर्यक के लिए सारा शहर छान रहे थे। आर्यक उनसे बचकर भाग रहा था, चारुदत्त के घर के पिछवाड़े का दरवाजा खुला देख, वह उसमें घुस गया, और एक कोने की तरफ़ छुपकर बैठ गया।

इतने में वर्धमान गाड़ी में गद्दे डाल कर चिल्लाया "बसन्तसेना से कह दो गाड़ी तैयार है।" यह अच्छा मौका जान, आर्यक बाहर आया। बन्द गाड़ी में बैठ गया। वर्धमान गाड़ी को नगर के बाहर चारुदत्त के बाग में ले गया।

गाड़ी के आते ही चारुदत्त ने आकर दरवाजा खोला, पर अन्दर आर्यक को देख

कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब आर्चक ने उसकी शरण माँगी, तो चारुदत्त ने उसको अभय देकर, उसी गाड़ी में कहीं सुरक्षित जगह पर जाने के लिए कहा। और उधर, शकार एक मित्र के साथ गाड़ी की इन्तजार कर रहा था, उस समय उनको संवाहक दिखाई दिया, जो बौद्ध सन्यासी हो गया था, वह अपने पीत वस्त्रों को, उद्यान के तालाब में धोकर आ रहा था। शकार ने उसको पहिले डाँटा फटकारा फिर मार मूरकर भेज दिया। उस समय वह गाड़ी आई जिसमें वसन्तसेना थी।

शकार को देखकर वसन्तसेना यदि घबरा गई, तो शकार उसको देखकर खुश हुआ। उसने वसन्तसेना को पैर पकड़कर मनाना चाहा। पर जब उसने उसको लात मारी तो उसका प्रेम क्रोध में परिवर्तित होगया। उस दुष्ट ने अपने मित्र से कहा—"इस स्त्री को मार दो। तुम्हें मुँह माँगा धन दूँगा।" पर उसके मित्र ने कहा कि वह काम, वह न कर सकेगा। गाड़ीवाले ने भी वही कहा।

"मैंने तो यूँ ही कहा था क्या मैं तुम्हें वाकई मरवा देता! तुम थे, इसलिए वसन्तसेना शरमा गई थी, तुम चलो जाओ।" यों कहकर शकार ने अपने मित्र और गाड़ीवाले को भेज दिया। फिर उसने बढ़ चढ़ कर वसन्तसेना से बात की, आखिर उसने उसका गला घोंट दिया। वसन्तसेना बेहोश हो गिर गई। शकार ने सोचा कि वह मर गई थी। जल्दी ही उसके मित्र और गाड़ीवाले ने आकर मालूम कर लिया कि शकार ने उसकी हत्या कर दी थी। जब मित्र ने उसे बुरा भला कहकर जाना चाहा तो शकार ने पूछा "वसन्तसेना को मारकर कहाँ जा रहे हो?"

मित्र को शकार को देखघिन होने लगी। उसने तलवार निकालकर उसको डराया और राजा के विरोधियों में शामिल होने के लिए चला गया। जब उसने गाड़ीवाले को घूँस देनी चाही, तो उसने लेने से इनकार कर दिया। उसने गाड़ीवाले से गाड़ी ले आने को कहा—"शकार ने उसको अपने घर में कैद करने का और चारुदत्त पर हत्या का अपराध आरोपण करने का निश्चय किया।

वह वसन्तसेना के शरीर पर सूखे पत्ते डालकर चला गया। इतने में बौद्ध सन्यासी वहाँ फिर आया। उसने अपने कपड़े सुखाने के लिए उन पर डाल दिये। बौद्ध सन्यासी ने पत्ते हटाये और जब उसने वसन्तसेना को देखा, तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने कभी उसकी जुआखोरों से रक्षा की थी। उसने उसकी सेवा शुश्रुषा की और समीपवाले बौद्ध आश्रम में उसको ले गया।

शकार ने न्यायस्थान में जाकर कहा—"वसन्तसेना को मैंने नहीं मारा है। कोई बदमाश उसको मेरे बाग में घसीट लाया और गहनों के लिए उसे उसने मार दिया।

न्यायाधिकारी ने अपने कर्तव्य के अनुसार गवाहों को बुलाकर पूछताछ प्रारम्भ की, वसन्तसेना की माँ ने कहा कि वह चारुदत्त के घर गई हुई थी और जब चारुदत्त से पूछा गया, तो उसने बताया कि वह घर वापिस चली गई थी। इस तहकीकात के शुरु होने के पहिले ही मैत्रेय वसन्तसेना का पता लगाने निकला। चारुदत्त ने उसके हाथ वे गहने लौटाये थे, जो वह उसके लड़के को सोने की गाड़ी खरीदने के लिए दे गई थी। वह गहने लेकर वसन्तसेना को ढूँढ़ता जा रहा था, तो रास्ते में उसको मालूम

हुआ कि चारुदत्त को न्यायस्थान ले जाया गया था। मैत्रेय वहाँ भागा। उसके पास के गहनों ने चारुदत्त के अपराध को निरुपित-सा कर दिया। यह सोचकर कि चारुदत्त ने ही गहनों के लिए वसन्तसेना की हत्या की थी, उसने उसको फाँसी की सजा दे दी। चारुदत्त ने बध्य-भूमि की ओर जाते हुये अपने लड़के को देखना चाहा।

रोहसेन ने रोते रोते जल्लादों से कहा—"मेरे पिता को न मारो, मुझे मारो।" इतने में वसन्तसेना बौद्ध सन्यासी की सहायता से चारुदत्त के घर की ओर चली। वहाँ उसको मालूम हुआ कि चारुदत्त को फाँसी दी जा रही थी। वह भी बध्य-भूमि पर आई। "उन्हें मारिये मत, मैं जीवित ही हूँ।" वह चिल्लाई। जल्लाद उसका चिल्लाना सुन चारुदत्त को छोड़कर, राजा के पास गये।

वसन्तसेना को जीवित देख, शकार डरकर भाग गया। परन्तु जल्लादों ने उसे पकड़ लिया। वसन्तसेना ने जो कुछ हुआ था, वह चारुदत्त को सुनाया।

इसी समय आर्चक ने यज्ञ वाटिका में राजा की हत्या कर दी। अब आर्चक ही राजा था। उसने कृतज्ञता में चारुदत्त को वेणु नदी के किनारे का कुशावती राज्य दे दिया। इन सब बातों को शर्वीलक ने आकर चारुदत्त को सुनाया।

चारुदत्त जब वसन्तसेना को साथ लेकर घर पहुँचा, तो उसकी पत्नी धूताम्बा, यह जानकर कि उसके पति को मृत्यु दण्ड दिया गया था, सती होने के लिए तैयार हो रही थी। सब के कष्ट दूर हो गये। शकार को भी चारुदत्त ने छुड़वा दिया। वह सपरिवार आराम से ज़िन्दगी बसर करने लगा।

चित्रकारों की सूझ

जय और विजय नाम के दो चित्रकार थे। वे प्रतिभाशाली थे। वे किसी को यदि थोड़ी देर देख लेते तो उसका चित्र बना देते। वे किसी का वर्णन सुनकर बिना देखे ही उसका चित्र बना देते। और इस तरह बनाते कि परिचित उसको पहिचान भी लेते।

उन्होंने अपने इस चातुर्य का कई राजदरबारों में प्रदर्शन किया। और कई राजाओंसे उन्होंने ईनाम भी पाये।

माधववर्माने उनसे कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम प्रतिभाशाली हो, पर मैं तुम्हारी एक छोटी-सी परीक्षा लूँगा। बड़े बुजुर्ग कहते आये हैं कि सब ज्ञानों से आत्म ज्ञान बड़ा है। यह स्वप्न में भी सच है, ऐसा मेरा विश्वास है। यदि तुम सचमुच प्रतिभाशाली हो, तो अपने ही चित्र बनाकर मुझे दिखाओ। अगर वे तुम्हारी शक्ल-सूरत से मिलते जुलते होंगे तो मैं तुमको अच्छा ईनाम दूँगा।"

जय और विजय इसतरह यह सुनकर दिखाई दिये, जैसे उनके मुँह का रंग उतर गया हो।

"तुम अक्सर अपनी शक्ल आईने में देखते ही होगे। उसको चित्रित कर देना, तुम्हारे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। जो अभी दासी थोड़ी देर के लिए आई थी। उसका चित्र तो तुमने ऐसा हूबहू बनाया कि कुछ न पूछो। उससे अधिक कठिन काम नहीं है यह।"

जय और विजय ने एक दूसरे को देखा। एक दूसरे के मुँह को गौर से पहिचाना। आँखों मानों आपस में बातचीत-सी की।

"अच्छा महाराज, हम आपकी परीक्षा में बैठेंगे।" उन्होंने कहा।

राजा ने नौकरों को बुलाकर कहा—"चित्रकारों को एक एक अलग कमरे में रखो। चित्रों के पूरा हो जाने के बाद उन्हें मेरे पास लाओ। देखो, उनके कमरे में न कोई आईना हो न कोई आईने जैसी चीज़ ही। सब तरहसे सावधानी बरती जाये।"

राजा के नौकर उनको एक खाली कमरे में ले गये।

अपना चित्र स्वयं बनाना सरल काम नहीं है। आईने में देखने पर भी दायें बायें में भी भेद रहता ही है। इसलिए जय और विजय अपना चित्र बनाने की कोशिश भी करते, तो परिणाम ठीक न होता। बनाने कुछ बैठते, और बन कुछ और जाता।

परन्तु उन्होंने वह काम करने की कोशिश न की। जय, विजय का और विजय, जय का चित्र याद कर करके बनाने लगे।

एक क्षण में दोनों के चित्र समाप्त हो गये। उन्होंने अपने चित्र अलग अलग सन्दूक में रखकर नौकरों द्वारा राजा के पास भिजवा दिये।

राजा के हाथ में जब सन्दूक पहुँचे तो वे मिल मिला गये। पर जब उसने एक एक हाथ में एक एक चित्र को अलग देखा तो, चित्रों की वास्तविकता देख कर वह चकित रह गया। उसे न सूझा कि चित्रकारोंने क्या उपाय सोच निकाला था। उसने जय और विजय को दरबार में बुलवाया, उनकी खूब प्रशंसा की, और उनका आदर सत्कार करके ईनाम देकर भेज दिया।

भक्त को ही कष्ट देने चाहिए

एक गाँव के बाहर एक उजड़ा मन्दिर और उसके पास ही ग्राम देवता की मूर्ति थी। एक दिन कोई उस तरफ़ से आ रहा था, उसे एक खड्ड पार करना था। उसने खड्ड के ऊपर वह मूर्ति रख दी और उस पर से खड्ड पार कर गया।

उसके बाद एक बुद्धिमान उस तरफ़ आया। मूर्ति को खड्ड पर पड़ा देखा, उसे उसने खड़ा करके रख दिया।

"बिना नारियल चढ़ाये ही मुझे छूते हो, दुष्ट कहीं के। जाओ, सिर दर्द से तुम सताये जाओ।"

साथ के देवताओं ने उससे पूछा—"जो तो तुम्हें कुचल कर गया, उसे यों छोड़ दिया और जिसने तुम्हें उठाकर रखा, उस पर क्रुद्ध हो रहे हो।"

"जिसे भक्ति ही न हो, उसका हम क्या कर सकते हैं! कष्ट तो उन्हीं को देने होते हैं, जिन्हें हम पर विश्वास होता है।" ग्राम देवता ने कहा।

नया शासक

कर्नाटक देश के राजा चामुन्डराय, के यहाँ गुण्डप्पा नाम का एक पुरोहित रहा करता था। राजकुटुम्ब में, जो कोई विधि संस्कार होते उनको गुण्डप्पा बड़ी होशियारी से किया करता।

एक दिन चामुन्डराय ने गुण्डप्पा से कहा—"तुम भाई, बहुत दिनों से हमारे यहाँ पुरोहित हो और सब कर्मकाण्ड बड़ी अच्छी तरह कर रहे हो। मुझे बड़ा सन्तोष है। यदि तुम्हारे मन में कोई इच्छा हो, तो बताओ, मैं अवश्य पूरा कर दूँगा।"

तुरत गुण्डप्पा ने कहा—"महाराज, मुझे और कोई इच्छा नहीं है। मेरी इच्छा है कि मुझे किसी ज़िले का शासक बना दिया जाय। मैं लोगों पर शासन करना चाहता हूँ। यह मेरी इच्छा कृपया पूरी कीजिए।"

"अच्छा तो ऐसा ही हो।" राजा ने कहा।

उसी समय नंजनगूड़ ज़िले के शासक के नियुक्त करने की आवश्यकता हुई। राजा ने गुण्डप्पा को उस पद पर नियुक्त किया। राजा ने सोचा कि वह ब्राह्मण था और ज्ञानी भी इसलिए वह काम अच्छी तरह करेगा।

परन्तु गुण्डप्पा ने राजकुटुम्ब में पौरोहित्य तो किया था, पर उसको शासन का कोई अनुभव न था। इसलिए राजा ने उसको कई बातों पर आगाह किया।

शासक को हमेशा गम्भीर रहना चाहिए, मतलब यह कि लोगों के सामने न हँसे, न उल्लास दिखाये। सबके कान काटो,

यानि जब कभी किसी से बात करो, तो इस तरह करो कि तीसरे व्यक्ति को न सुनाई दे।

सबके बालों को हाथ में रखो, यानि सब की कमज़ोरियों को बखूबी जानकर, किसी की धौंस न चलने दो।

राजा की बताई हुए बातें ध्यान से सुनकर गुण्डप्पा ने कहा—"समझ गया हूँ। महाराज।"

राजा से नियुक्ति पत्र लेकर, उस से विदा लेकर, गुण्डप्पा खुशी-खुशी उस दिन घर गया।

गुण्डप्पा के चले जाने के बाद राजा ने नंजनगूड़ भी खबर भिजवाई कि नया शासक आ रहा था।

नये शासक के स्वागत के लिए नगर के बाहर बड़े लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। बड़े पैमाने पर स्वागत की तैयारियाँ हुई थीं।

इस बीच गुण्डप्पा ने अपने प्रयाण के लिए एक पोटली बाँधली। उसमें पाँच-छः धोतियाँ रखकर, सिर पर रख पैदल ही नंजनगूड़ के लिए निकल पड़ा। रास्ते में यदि कहीं दूब दिखाई देती, तो आदतन वह उसे तोड़ लेता और बाँधकर रख लेता। सिर पर पोटली और हाथ में दूब लिये गुण्डप्पा नंजनगूड़ पहुँचा। तबतक दुपहर ढ़ल चुकी थी। जो शासक के स्वागत के लिए आये थे, बिना खाये-पीये नगर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे।

उन्होंने गुण्डप्पा को देखकर उसे पुरोहित ही समझा, यानि उसे शासक न समझा। चूँकि वह उसी रास्ते आ रहा था जिस रास्ते शासक को आना था, उन्होंने सोचा कि इससे पूछा जाय कि शासक

आ रहे हैं या कहीं रास्ते में पड़ाव कर रहे हैं।

शासक के आधीन एक कर्मचारी ने गुण्डप्पा से पूछा—"हम शासक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या आप उनके बारे में कुछ जानते हैं?"

तुरत गुण्डप्पा ने सिर पर से पोटली उतारकर, उसमें से नियुक्ति पत्र निकालकर, अपने कर्मचारी के हाथ में, दो दूब की घास के साथ उसे रखा।

सब कर्मचारियों को आश्चर्य हुआ कि इस तरह का आदमी क्यों शासक नियुक्त किया गया था। लेकिन नियुक्ति पत्र के अनुसार गुण्डप्पा ही उनका शासक था, इसलिए बाजे-गाजे बजाते, जलूस में उसको वे नगर में ले गये।

गुण्डप्पा को, उसके आधीन काम करनेवाला अपने घर भोजन के लिए ले गया। सवेरे से उसने कुछ न खाया था, पिया था, इसलिए पेट-भर खाकर उसने पूछा—"पान कहाँ है?"

कर्मचारी ने पान मँगाकर दिया।

"और दक्षिणा कहाँ है?" गुण्डप्पा ने पूछा।
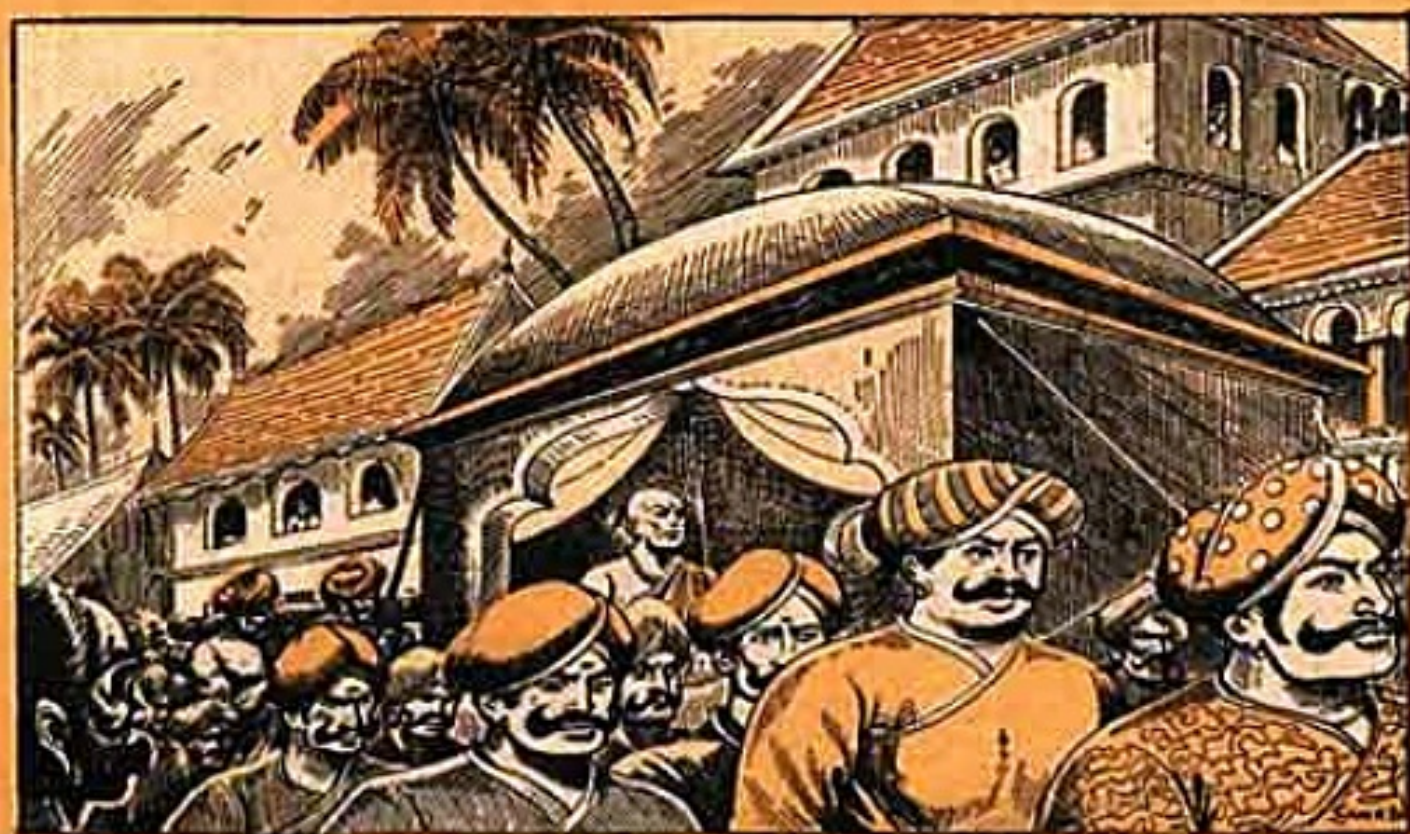
कर्मचारी यह न जानता था कि गुण्डप्पा पुरोहित था, ताम्बूल और दक्षिणा माँगने की उसकी आदत थी। यह जानकर कि नया शासक उससे रिश्वत माँग रहा था उसने एक थैली में पाँच सौ मुहरें डालकर, गुण्डप्पा को दीं। गुण्डप्पा तो इस ख्याल में था कि ज्यादह से ज्यादह एक दो रुपये मिलेंगे।

जब उसने थैली खोलकर देखी, तो वह हैरान रह गया। "वाह, मैं जल्दी ही कचहरी में पहुँचूँगा। तुम सब अपना काम देखते रहो।" उसने कर्मचारी से कहा।

कर्मचारी कचहरी चला गया।

तब गुण्डप्पा फुरसत से बैठकर, राजा ने जो कुछ बताया था, उस पर सोचने लगा। उसमें पहिली बात थी कि गम्भीर रहो। गुण्डप्पा न जान सका कि कैसे यह किया जाय। आखिर वह मुँह पर काजल पोतकर कचहरी में गया।

उसकी शक्ल देखकर कचहरी में सब हक्के-बक्के रह गये। पर किसी ने कुछ न कहा।

राजा ने दूसरी बात यह कही थी कि कर्मचारियों के कान काटो।

गुण्डप्पा ने एक कर्मचारी को पास बुलाया, वह गया। उसने उसको और पास बुलाया। यह सोच कि नया शासक उसको कोई बड़ा रहस्य बताने जा रहा था, कर्मचारी ने अपना मुख, गुण्डप्पा के कान से लगा दिया। तुरत गुण्डप्पा ने उसका कान काट लिया। वह दर्द के मारे चिल्ला पड़ा।

एक और बात रह गई थी। सबके बाल उसके हाथ में होने चाहिए थे। गुण्डप्पा अब इसकी प्रतीक्षा में था।

समय हो गया था। जब कर्मचारियों ने देखा कि नया शासक अपनी जगह से न उठ रहा था, वे भी अपनी जगह बैठे रहे। उनको नींद आ रही थी।

आखिर आधी रात हो गई। कचहरी के सब कर्मचारी अपनी अपनी जगह सो रहे थे। उस समय गुण्डप्पा अपनी जगह से उठा। सबके बाल एक कैंची से काटकर, अपने हाथ में लेकर वह घर चला गया।

राजा की कही बातें उसने सब कर दी थीं, इसलिए उसकी प्रशंसा सुनने, वह अगले दिन सवेरे ही उससे मिलने निकल पड़ा।

गुण्डप्पा ने जब सारी बातें सुनाईं, तो राजा को अपने कानों पर ही विश्वास न हुआ।

इतने में नंजनगूड़ से एक कर्मचारी आया और उसने नये शासक के विचित्र व्यवहार का वृत्तान्त दिया। राजा ने यह सोचकर कि पुरोहित को शासक के पद पर नियुक्त करना, उसकी ही गल्ती थी, उसने गुण्डप्पा को फिर पौरोहित्य का काम सौंप दिया।

पाप के कारण

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतारकर, कन्धे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप वह श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, कहा जाता है कि जो कोई कष्ट मनुष्य उठाते हैं, वे स्त्रियों के कारण ही होते हैं। पर तुम जो कष्ट उठा रहे हो, उसका कारण तो कोई स्त्री नहीं मालूम होती। फिर भी एक ऐसी कहानी सुनाता हूँ जो यह जताती है कि स्त्रियों के कारण आदमी कितना पापी हो जाता है। तुम्हें थकान न हो, इसलिए यह सुनो।" उसने यों कहानी सुनानी शुरु की।

माण्डव्य महामुनि तपस्या कर रहा था। राजसैनिक किसी चोर को ढूँढ़ते हुए उसके पास आये, उसको चोर समझकर वे पकड़कर ले गये। और उसको फाँसी पर चढ़ा दिया।

बेताल कथाएँ

"देह छोड़ने के बाद माण्डव्य ने यम के पास जाकर कहा। "क्योंकि तुमने मक्खियों को काँटों से चुभाकर सताया था, इसलिए तुम्हें फाँसी पर चढ़वाना पड़ा" यम ने उसको उत्तर दिया।

"अनजाने जो मैंने छोटी-सी गल्ती की थी क्या उसके लिए मुझे इतना बड़ा दन्ड देगो! तुम शूद्र होकर मनुष्य रूप में जन्मो।" माण्डव्य ने क्रुद्ध हो यम को शाप दिया।

इस शाप का फल भुगतने के लिए यम विदुर के रूप में पैदा हुआ।

विदुर भूमि पर सौ साल रहा। तब तक अर्भय नाम का आदित्य यम का कार्य निर्वहण करता रहा।

क्योंकि यम ने, प्राणियों के दण्ड निर्धारित करने में गल्ती की थी, और इसलिए ही उसे मुनि का शाप भुगतना पड़ा था, वह, जिनको यमलोक आकर नरक यातनायें सहनी पड़ती थीं, उनके पाप, और पापों के कारणों का बड़े ध्यान से अध्ययन करता।

यह सब करने पर अर्भय को एक विचित्र बात मालूम हुई। जो नरक में थे,

उनमें से नब्बे प्रतिशत यही कहते आये थे कि जो पाप उन्होंने किये थे, स्त्रियों के कारण किये थे। क्योंकि हर कोई यही कह रहा था, इसलिए अर्भय ने सोचा कि जरूर उसमें कोई सचाई होगी। यम जब विदुर का जीवन पूरा करके अपने पद पर आया, तो अर्भय ने जो कुछ निष्कर्ष निकाला था, उसे भी बताया।

यम इस विषय में बहुत देर तक सोचता रहा। यदि अधिक पापों के कारण स्त्रियाँ ही हैं, तो पापियों को इतना कष्ट दण्ड देना अनुचित था। जो आदमी पाप कर रहे थे उनके दण्ड में स्त्रियों को भी हिस्सा बँटाना होगा।

यम को, अपने बचपन की एक बात याद आई। उसकी माँ संज्ञादेवी यम को जन्म देने के बाद अपने पति सूर्य के पास अपनी छाया छोड़कर मायके चली गई थी। इसके बाद छाया ने यम को सौतेले लड़के के तौर पर देखा, और अपने लड़कों का वह अधिक ख्याल करती। यम वह न सह सका, उसने उसको लात मारी। छायाने शाप दिया कि उसकी टांग कटकर भूमि पर गिर जाय। इसके बाद,

यम अपने पिता सूर्य के अनुग्रह से बड़ी कठिनाई से शाप विमुक्त हो सका।

यह याद करके यम को भी लगा कि शायद स्त्रियाँ ही सब पापों के कारण हैं। फिर भी बिना विचार किये किसी निर्णय पर आना ठीक न था। इसलिए यमने अपने अनुचरों में से चण्ड को बुलाकर कहा—"चण्ड, तुम दस वर्ष मनुष्य होकर भूलोक में रहो। और यह साफ़ साफ़ मालूम करो कि पापों के कारण स्त्रियाँ हैं कि नहीं। मनुष्यों को पैसे की जरूरत है। इसलिए मैं तुम्हें लाख सोने की मुहरें देता हूँ। जब तक तुम वहाँ रहोगे, तब तक तुम में देवताओं की कोई शक्तियाँ न होंगी। साधारण मनुष्य की तरह जीओ। अनुरुप कन्या को देखकर विवाह कर लो। गृहस्थी चलाओ। मैं चित्रगुप्त से कहूँगा कि तुम्हारे पाप और पापों का हिसाब न रखे, समझे।"

दस वर्ष तक भूलोक में चण्ड को रहना पसन्द न था। पर चूँकि यम का निर्णय उसके अध्ययन पर निर्भर था, इसलिए वह मनुष्य होने के लिए मान गया।

यम ने चण्ड को तीस साल का सुन्दर युवक बनाकर एक लाख सोने की मुहरें देकर कहा—"भूमि पर तुम जहाँ चाहो, वहाँ रहो।"

चण्ड चन्द्रसिंह नाम अपनाकर इन्द्रप्रस्थ में उतरा। यम ने इस नगर को देवलोक की तुलना में बनाया था। उस जैसा नगर उन दिनों भारत वर्ष में कहीं न था। जितना वैभव जितनी सभ्यता वहाँ थी, कहीं और न थी।

चन्द्रसिंह वहीं रहने लगा। उसने कहा कि वह काश्मीरदेश का व्यापारी था। वह अमीर की तरह जीवन बिताने लगा। कई

कुलीनों ने अपनी कन्यायें देकर, उसका विवाह करना चाहा। उसने सौदामिनी नाम की कन्या को चुनकर, उससे विवाह किया। क्योंकि वह बहुत सुन्दर थी। उसका वंश बहुत बड़ा था परन्तु सौदामिनी के पिता के पास कोई सम्पत्ति न थी। पुत्र पुत्रियाँ, वंश गौरव के अतिरिक्त उसकी कोई सम्पत्ति न थी।

सौदामिनी जितनी सुन्दर थी, उतनी ही स्वाभिमानी और वंशाभिमानी भी थी। यद्यपि उसने पिता के घर नितान्त दारिद्र्य के दिन काटे थे, पर उसके मन में तुच्छ विचार न उठते।

यह सब देख, चन्द्रसिंह अपनी पत्नी को बड़े प्रेम से देखता। इस तरह देखता मानों उसकी पूजा ही कर रहा हो। जिस किसी चीज़ के लिए वह इच्छा प्रगट करती, वह तुरत उसे देता, क्योंकि उसके पास बहुत-सा धन जो था।

विवाह के बाद, जब वह दारिद्र्य के कष्ट भूल चुकी थी सौदामिनी में एक विचित्र परिवर्तन हुआ। ज्यों ज्यों उसका पति उसका दास-सा होता गया, त्यों त्यों वह उसको और दास बनाती गई।

जब उसने उसको आकाश में उठाया, तो वह उसकी पहुँच से परे चली गई। उसकी इच्छायें, आज्ञा का रूप लेने लगीं। उसका स्वाभिमान अहंकार हो रह गया। तो भी चन्द्रसिंह उसकी इच्छा के अनुसार सब कुछ करता रहा। जब वह, सौदामिनी को, उसकी आज्ञा पालन पर आनन्दित होता पाता, तो वह भी प्रसन्न होता।

सौदामिनी का व्यवहार ऐसा था, मानों वह यह सोचती हो, जैसे उसके पति के के पास धन का खजाना हो, उसने अपनी बहनों का बड़े धूम धाम के विवाह किया।

अपने पति से माल खरीदवाकर, अपने भाइयों को व्यापार पर विदेश भेजा।

हमेशा चन्द्रसिंह के घर में राजा महाराजाओंका ऐश्वर्य रहता। जब कभी त्यौहार आते, तो उनके घर में दावतें होतीं। यह और किसी घर में न होता।

थोड़े समय में ही चन्द्रसिंह जितना धन लाया था, वह सब समाप्त हो गया। चूंकि उसकी धाक नगर में थी इसलिए उसका जीवन यथापूर्व चलता गया।

परन्तु अब चन्द्रसिंह में अपनी पत्नी की इच्छाओं को पूरी करने की शक्ति न थी। अगर पति किसी बात में कुछ आनाकानी करता, तो वह रौद्र रूप धारण करती। वह इसलिए पत्नी के सामने घबराता।

अब उसको एक ही आशा थी कि उसके साले विदेश में व्यापार करके आयेंगे, ओर उनके लाभ में उसे भी कुछ हिस्सा मिलेगा। वह उनकी वापिसी की इन्तजार करने लगा।

आखिर वे आये। एक की नाव समुद्र में डूब गई। माल सब नष्ट हो गया। जैसे-तैसे प्राण बचाकर वह वापिस आया था। दूसरे ने व्यापार किया, जो कुछ

फायदा हुआ, वहीं खर्च दिया और खाली हाथ घर वापिस आया।

चन्द्रसिंह ने कुछ दिन लोगों को ठगकर मित्रों के ऋण पर जीवन व्यापन किया। पत्नी उस पर बहुत नाखुश हुई। कर्ज़ देनेवाले भी जान गये कि उसके पास पैसा न था। वे उससे तकाजा करने लगे। वह उनसे बच-बचकर फिरा करता।

आखिर मामला न्यायस्थान में पहुँचा। सैनिक उसे पकड़ने आये। चन्द्रसिंह अपने घोड़े पर सवार होकर, सबसे छुपकर भागने लगा। जब रास्ते में उसे कुछ लोग पकड़ने आये, तो उसने उन्हें तलवार से मार दिया।

इसके बाद चन्द्रसिंह अपना नाम बदलकर, दूसरे देशों में चोरी करके, हत्यायें करके, जुआ खेलकर, नीच जीवन बिताकर दस वर्ष की अवधि पूरा करके, वह अपने मौलिक रूप में आ गया और यम लोक चला गया।

यम ने उसे देखते ही पूछा—"आ गये चण्ड! सच मालूम कर लिया? मनुष्यों के पापों का कारण स्त्रियाँ ही हैं! उनकी जिम्मेवारी कितनी है?"

"स्वामी, मर्द जो पाप करते हैं, उनके लिए स्त्रियाँ बिल्कुल जिम्मेवार नहीं हैं। सारी जिम्मेवारी मर्द की ही है।" चण्ड ने कहा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, चण्ड ने यम से इस प्रकार क्यों कहा? सौदामिनी के कारण ही तो उसने इतने कष्ट उठाये थे, इतने पाप किये थे! उसका क्या अर्थ था, जब उसने कहा कि सारी जिम्मेवारियाँ मर्दों की ही थीं। यदि तुमने इन प्रश्नों का उत्तर जान-बूझकर न दिया, तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"चण्ड ने जो कहा, उसमें कुछ भी असत्य नहीं है। उसका अनुभव भी इस बात को सिद्ध करता है। पुरुष अपने आनन्द के लिए स्त्रियों में स्वार्थ और लोभ पैदा करते हैं। उनके कारण जब उनको कठिनाइयाँ होती हैं, तो अपनी गल्तियाँ न ठीक करके, वे पाप करने को उतारु हो जाते हैं। चन्द्रसिंह यद्यपि गरीबी के कारण कष्ट उठा रहा था, तो भी पत्नी से उसने न कहा कि उसके पास पैसा न था। सौदामिनी दारिद्र्य से अपरिचित न थी। चन्द्रसिंह ने अपनी तृप्ति के लिए ही उसमें अपव्यय की आदत डाली थी। उसने इस तरह व्यवहार किया मानों वह घर की मालकिन हो और वह स्वयं सेवक। इसके लिए जिम्मेवार चन्द्रसिंह ही है। उसकी पत्नी किंचित मात्र भी नहीं।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

जल राक्षस

किसी दूर देश में, एक झील के पास एक झोंपड़ी में, एक गरीब किसान रहा करता था। उस किसान के तीन लड़के थे। माँ-बाप के गुज़र जाने के बाद, दोनों बड़े भाइयों ने जो कुछ ज़मीन-जायदाद थी, उसे खा-पीकर खतम कर दी।

"यह घर मेरा है।" बड़े ने कहा।

"घर में जो कुछ सामान है, वह मेरा है।" मंझले ने कहा।

"और मेरा क्या है?" तीसरे ने पूछा।

"तेरा! घर और घर के सामान के अलावा, अगर कुछ हो, तो ढूँढ़कर ले लेना।" दोनों बड़े भाइयों ने कहा।

तीसरे ने सारा घर देख-दाखकर, कोने में ताड़ के रेशे का एक गट्ठर देखा। भाइयों ने कहा कि वह उसे ले सकता था। ताड़ के रेशे को कन्धे पर रखकर, वह झील के किनारे गया।

वह झील के किनारे के एक पेड़ के सहारे बैठकर सोच रहा था कि रोजी रोटी के लिए क्या किया जाय कि उसे इतने में एक गिलहरी दिखाई दी।

उसने सोचा कि ताड़ के रेशे से, रस्सी बनाऊँगा, रस्सी से फन्दे, फिर उनसे तरह तरह के जानवर पकड़कर और उनके चमड़े बेचकर गुज़ारा किया जा सकता है। उसने झट एक फन्दा बनाकर गिलहरी को पकड़ लिया। मगर जब उसने उसको पकड़ लिया, तो उसको उसे मारने की इच्छा न हुई। इसलिए उसने तख्तियों से एक छोटा घर बनाया और उसमें उसे रख दिया।

उसी तरह उसने एक खरगोश भी पकड़ा। वह उसे भी न मार सका। उसको भी उसने उस तख्तियों के घर में सुरक्षित रख दिया।

सुब्रह्मण्यं

वह वहीं किनारे पर बैठा रहा और ताड़ के रेशे से फन्दे बनाने लगा। उसके देखते-देखते एक बड़ा भालू पास ही एक गुफ़ा में घुसा।

जब वह किसान का लड़का फन्दे बना रहा था, तो पानी में उसे गलगल ध्वनि सुनाई दी। जब उसने सिर उठाकर देखा तो पाया कि एक लड़का पानी में से आधा ऊपर उठा। उसने एक पत्थर पकड़ रखा था और उसके ऊपर से उसे देख रहा था।

उस झील में एक जल राक्षस रहा करता था। वह कभी पानी से बाहर न आता। यदि कोई झील के पास आता तो इधर-उधर के जादू करके वह उसे पानी में उतारकर, उसे अन्दर घसीट लेता। कहा जाता था कि उसने कई यात्रियों को इस तरह घसीट कर उनका बहुत-सा सोना जमा कर रहा था। किसान के लड़के ने सोचा कि उस जल राक्षस का लड़का ही उसे देख रहा था।

"हमारी झील के पास आकर तुम क्या कर रहे हो?" उस राक्षस के लड़के ने पूछा।

"मैं इस झील को फन्दे में कसने जा रहा हूँ, तब यह झील उसमें बन्द हो जायेगी।" किसान के लड़के ने कहा।

राक्षस के लड़के ने तुरत डुबकी लगाई और उसने राक्षस को किसान के लड़के की बात बताई।

"वह इतना करेगा! उसे जीने न दो। तुम बाहर जाओ और उससे पेड़ पर चढ़ने की बाजी लगाओ। जब वह पेड़ पर चढ़ कर थक जाय, तो उसे पानी में धकेल दो। बाकी जो कुछ करना होगा, मैं देख लूँगा।" राक्षस ने अपने लड़के से कहा।

राक्षस के लड़के ने बाहर आकर किसान के लड़के से कहा—"क्या पेड़ पर चढ़ने में मेरा मुकाबला कर सकते हो?"

"देखते नहीं हो! मैं काम कर रहा हूँ। चाहो, तो मेरे छोटे भाई से मुकाबला करो।" कहकर उसने तख्तियों के घर में से गिलहरी छोड़ी। राक्षस के लड़के ने अभी पेड़ पर हाथ रखा था कि गिलहरी चोटी की टहनी पर जा चढ़ी।

राक्षस के लड़के ने फिर पिता के पास जाकर यह सब बताया।

"तो उससे तुम भागने के लिए ललकारो। उसे झील के चारों ओर दौड़ाओ। जब वह थक जाये, तो झील में धकेल देना।" राक्षस ने कहा।

राक्षस के लड़के ने बाहर आकर फिर कहा—"तो आओ मेरे साथ दौड़ लगाओ।"

"आँखें नहीं हैं! मैं काम में लगा हूँ। मेरे छोटे भाई को हराकर देखो।" कहकर, किसान के लड़के ने खरगोश छोड़ा। छोड़ने की देरी थी कि वह बाण की तरह भागा और कहीं अदृश्य-सा हो गया।

राक्षस के लड़के ने जाकर यह पिता को बताया।

"आश्चर्य की बात है। इस बार उसे कुश्ती के लिए बुलाओ। हराकर उसे पानी में फेंक दो।" राक्षस ने कहा।

"अभी मेरा काम पूरा नहीं हुआ है। वह जो गुफ़ा दिखाई दे रही है, उसमें मेरा बाबा है। उससे कुश्ती करो, तुम जीतो तो जानूँ।" किसान के लड़के ने कहा।

राक्षस के लड़के ने जाकर गुफ़ा में भालू को उकसाया। भालू ने उसे नोंचा।

उसे चीर फाड़ कर छोड़ दिया। वह जैसे तैसे बच-बचाकर, पिता के पास गया और उसने उसे सारा वृत्तान्त सुनाया।

जल राक्षस डर गया।

"यह कोई उद्दंड मालूम होता है। इसके भाई पेड़ पर चढ़ने में, दौड़ने में, तुमसे आगे बढ़े हैं। इसके बाबा ने तो, करीब-करीब तुम्हें मार ही दिया था। यह शायद हमारे झील में फन्दा लगाकर, हम सबको कहीं बन्द न कर दे। यह जाकर पूछो कि कितना सोना देने पर वह हमें छोड़कर चला जायेगा।" राक्षस ने लड़के से कहा।

उसने जाकर किसान के लड़के से पूछा।

"तुम सोना लाओ, सोना देखकर बताऊँगा।" किसान के लड़के ने कहा।

राक्षस का लड़का कुछ सोना लाया। किसान का लड़का खुश न हुआ। राक्षस देते-देते इतना ऊबा कि उसके पास जितना सोना था, वह सब उसने भेज दिया।

"इसके अलावा, हमारे पास रत्ती-भर सोना नहीं है।" राक्षस के लड़के के कहने पर किसान का लड़का वह सब सोना लेकर अपने पिता के घर आया।

"तुम्हें इतना सोना कहाँ से मिला!" भाइयों ने आश्चर्य से पूछा।

"इस रस्सी से यह कमाया है।" छोटे भाई ने कहा।

"यह घर, इस घर का सामान लेकर हमें वह रस्सी दे दो।" बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा।

छोटे भाई ने रस्सी दे दी। अपने पिता का घर ठीक करवाकर, अपने धन से खेत, गौ आदि खरीदकर, वह आराम से रहने लगा।

किसी को न पता था कि उसके भाई, वह रस्सी लेकर कहाँ चले गये थे।

"अरे छोटे! क्या हमारी सीता से शादी करोगे?"

"जी नहीं। हमारे घर में सब बन्धुओं से ही शादी करते हैं। मेरे पिता जी ने मेरी माँ से, मेरे दादा ने दादी से और जीजा ने बहिन से शादी की है।"

"अरे यह चित्र क्या है?"

"देवता का चित्र है।"

"तुझे कैसे मालूम कि देवता कैसा होता है?"

"अभी बना जो रहा हूँ। उसे देखकर मालूम हो जायेगा।

"अरे यह क्या, नाक बन्द करके खीर खा रहे हो?"

"अगर नाक न बन्द की तो सुगन्ध आयेगी सुगन्ध आयेगी तो मुख में पानी आयेगा। पानी आने से खीर में पानी मिल जायेगा और वह पतली हो जायेगी।"

"रात को बहुत बड़ा भूत देखा मैंने। मैं बहुत डर गया, जानते हो?"

"दीवार पर तेरी परछाईं ही होगी इसलिए ही वह भूत की तरह था।"

एस. शंकरनारायण, मद्रास.

बिम्ब प्रतिबिम्ब

विशाल नगर में विवेकवन्त नाम का एक राजा था। वह रोज सवेरे, शाम को अपने महल की छत पर चला जाता, और वहाँ घूमता घूमता सूर्योदय और सूर्यास्त की शोभा देखा करता।

हर रोज सवेरे महल के पास से एक लकड़हारा, जंगल में लकड़ियाँ काटने जाता, और शाम को लकड़ियों का गट्ठर लेकर वापिस आया करता।

हर रोज सवेरे और शाम वह राजा को दिखाई देता। जब वह सवेरे, जंगल की ओर जाता दिखाई देता, तो राजा को तरस आती "जाने यह कितना गरीब है। यूँ ही अस्थिपंजर-सा है। रोज इतनी मेहनत न करे, तो शायद उसका गुजारा न हो।"

जब शाम को वह गट्ठर लादकर आता दिखाई देता तो न मालूम राजा को क्यों गुस्सा आता "पापी कहीं का, अगर इसकी चमड़ी भी उखाड़ दी जाये, तो कोई पाप नहीं।"

राजा को भी यह सोच आश्चर्य हुआ कि क्यों एक आदमी को देखकर, प्रातःकाल एक भावना मन में पैदा होती थी और शाम को उसे देखकर क्यों ठीक उसके विरुद्ध भावना पैदा होती थी।

आखिर उसने अपने मन्त्री को बुलाया। उसको उसने अपना अनुभव बताया, और उससे पूछा कि क्यों उसमें यों परस्पर विरोधी भावनायें पैदा होती थीं। उसने उनका कारण बताने के लिए कहा।

मन्त्री ने तीन दिन का समय माँगा।

अगले दिन मन्त्री, गरीब का वेष धारण कर, लकड़हारे के पीछे पीछे जंगल

गया। दिन भर उसने देखा कि वह किस तरह मेहनत करता था। शाम को भी वह उसके पीछे पीछे गया।

राजा, उस लकड़हारे को देखकर क्यों तरस खा रहा था, मन्त्री जान गया। परन्तु वह यह न जान सका, कि क्यों राजा को उसे देखकर गुस्सा आता था।

दूसरे दिन मन्त्री, साधु के वेष में लकड़हारे के घर की ओर गया।

उसको घर में आता देख, लकड़हारे की पत्नी ने उसको अन्दर बुलाया, उसको बिठाकर उसका आदर सत्कार किया।

मन्त्री को चन्दन की लकड़ियों की सुगन्ध आई।

"लगता है, घर में चन्दन की लकड़ियाँ खूब हैं। उन्हें बेचकर क्यों नहीं आराम से जीते! क्यों यों कष्ट झेल रहे हो!" मन्त्री ने सहानुभूति में कहा।

"बाबू, जोर से न कहो जब वे लकड़ियाँ काटते हैं, तो कभी कभी चन्दन भी मिल जाता है। मैंने एक कमरे में चन्दन जमा कर रखा है। कभी न कभी राजा तो मरेंगे ही। जब राजा का दहन संस्कार होगा, तो किसी भी दाम पर चन्दन

खरीदा जायेगा इसलिए मैंने उसे फुन्कर न बेचकर, रख रखा है।" लकड़हारे की पत्नी ने कहा।

मन्त्री को मालूम हो गया कि लकड़हारे पर राजा को क्यों गुस्सा आ रहा था। जब लकड़हारा सवेरे जंगल में लकड़ियाँ काटने जाता है, तो वह अपनी गरीबी पर सोचता है। सोचता है कि उसको गुजारे लायक लकड़ियाँ मिलें। राजा को तब उसे देख तरस आती है।

जब लकड़हारा अपना काम करके घर आ रहा होता है, तो उसे चन्दन का ख्याल आता है, तब वह सोचता है कि क्या अच्छा हो कि राजा जल्दी मर जाये, ताकि चन्दन बढ़े चढ़े दाम पर बेचा जा सके। तब राजा को उस पर बड़ा गुस्सा आता है।

लकड़हारे के भाव, और राजा के भाव, बिम्ब प्रतिबिम्ब-से हैं।

मन्त्री लकड़हारे की पत्नी से विदा लेकर अपने घर चला गया।

अगले दिन, वह रोज की तरह दरबार में हाजिर हुआ। "क्यों मन्त्री, भेद मालूम हुआ?" राजा ने पूछा।

"सच मालूम कर लिया है। अगर आप यह वचन दें कि उस लकड़हारे को सजा न देंगे, तो मैं सच सच बताऊँगा।" मन्त्री ने जो कुछ गुजरा था, बता दिया।

राजा ने मन ही मन सोचा कि लकड़हारा मेरी मौत इसीलिए ही तो चाह रहा है, क्योंकि वह गरीब है। उसने बुलाकर उसे समझाया और थोड़ा बहुत रुपया भी उसे दिया ताकि उसको अधिक मेहनत मशक्कत न करनी पड़े।

[४]

जल्दी ही राजकुमार उनसे मिल गया। मन्त्री ने उसे रोककर पूछा—"जो फल तुमने युवराज को बेचे थे वे क्या अच्छे फल थे?"

"उन्हे, तो स्वयं मैं ही पेड़ों पर से तोड़ कर लाया था।" राजकुमार ने कहा।

"तो उनके खाने के बाद हमारे युवराज के दो सींग क्यों निकल आये? क्यों उनकी बड़ी-सी सफेद दाढ़ी आ गई?" उन्होंने फिर राजकुमार से पूछा। यह सुन राजकुमार को आश्चर्य न हुआ। वह जानता था कि ऐसा ही होगा। उन पर यही गुज़रना चाहिए था।

"मैं रोज ये ही फल तो खा रहा हूँ। मेरे सींग क्यों नहीं उगते? मेरे क्यों नहीं दाढ़ी आती?"

मन्त्री न जान सके कि इसका क्या जवाब दिया जाय? राजकुमार ने कुछ देर इस तरह दिखाया, जैसे कुछ सोच रहा हो फिर कहा—"कहीं तुम्हारे युवराज, उनको खाने के बाद सो तो नहीं गये थे?"

"क्यों नहीं सोये थे, हाँ सोये थे!" मन्त्रियों ने कहा।

"तब क्या है! उसी के कारण ऐसा हुआ है।—लगता है, आप किसी दूर देश से आ रहे हैं। इसलिए ही आपको यहाँ के रिवाज नहीं मालूम। खाकर कभी नहीं सोना चाहिए। सोये तो सींग और दाढ़ी निकल आते हैं।" राजकुमार ने कहा।

यह सुन दूर देश के मन्त्री एक दूसरे का मुँह देखने लगे। गल्ती युवराज की है, क्यों इतना खाकर वे सोये! पर अब क्या किया जाये! अच्छी आफत आ पड़ी है। राजकुमारी, कुछ भी हो इस रूप में युवराज से विवाह न करेगी।

"यदि हमने इस दूल्हे को ले जाकर दिखाया तो वे हमें पीट-पीट कर धुन देंगे। इससे अच्छा तो वापिस चले जाना है।" मन्त्रियों ने कहा।

"कुछ भी हो, मैं वापिस नहीं जाऊँगा। इस राजकुमारी के लिए मैं कबसे इन्तज़ार कर रहा हूँ। अब जब कि वह मिल रही है, मैं बिना उसको लिये नहीं जाऊँगा।" युवराज ने कहा।

मन्त्रियों में एक ऐसा भी था, जो युवराज का हित बहुत चाहता था। उसने एक उपाय सोचकर यों कहा—"किसी को दुल्हा बनाकर दिखाने के लिए एक नौजवान कहीं से ढूँढ़ा जाय। तब राजकुमारी हमारी हो जायेगी। जब वह हमारे देश में एक बार कदम रखेंगी तो हमारी बात नहीं सुनेंगी, तो क्या करेंगी!"

यह उपाय अच्छा था। सब मान गये। अब किसी नौजवान को ढूँढ निकालना ही बाकी था। फिर जो इधर-उधर देखा तो पता लगा कि फल बेचनेवाला ही उन सब में नौजवान था।

युवराज के मन्त्रियों ने राजकुमार से अपनी चाल साफ़ साफ़ कहदी। उन्होंने

उससे, शादी होने तक दुल्हा बनने के लिए कहा। उसने अपना सन्तोष बाहर व्यक्त न करके कहा—"मेरा इससे क्या सरोकार! आपस में जो चाहें कीजिये, मुझे क्या! मुझे बहुत से काम हैं।"

मन्त्रियों ने राजकुमार पर जोर डाला। मुहरों का सौदा भी होने लगा। उन्होंने पाँच मुहरें देने के लिए कहा। पर राजकुमार न माना। आखिर, सात मुहरों पर भाव पट गया।

राजकुमार को अच्छे कपड़े पहिनकर गाड़ी पर बिठा दिया गया। युवराज को एक मामूली घोड़े पर सवार किया गया और उसके मुँह पर सेहरा डाल दिया गया। नगर में पहुँचने के बाद, युवराज को एक कमरे में रखने की व्यवस्था की गई। ये सब इन्तज़ाम करके बरातवाले आगे बढ़े।

राजा बरात का स्वागत करने नगर के बाहर गया। क्योंकि उसका होनेवाला दामाद सुन्दर था और वर पक्षवाले बहुत से भेंट उपहार लाये थे इसलिए वह बड़ा खुश हुआ।

उसे एक ही डर था, कहीं ऐसा न हो कि बरातवाले, उसकी लड़की की

बदनामी के बारे में न जान जायें। अगर यह मालूम हो गया, तो किसी भी हालत में युवराज उसकी लड़की से कभी भी शादी न करेगा।

इसलिए राजा ने विवाह के प्रबन्ध बड़ी तेज़ी से करवाये। शादी की दावतें चार दिन तक करनी थीं। अगर चारों दिन बरातियों के लिए दावतें दी गईं, उनको मनोरंजन में मस्त रखा गया, तो राजकुमारी की बदनामी के बारे में जानने का मौका उनको मिलेगा ही नहीं।

तीन दिन विवाह की दावतें होती रहीं और तीनों दिन दुल्हिन दिन-रात लगातार रोती ही रही। वह एक क्षण अपने प्रियतम राजकुमार को न भूल सकी। इसलिए उसने परदा उठाकर दुल्हे को देखा भी नहीं।

चौथे दिन दावत में दुल्हे दुल्हिन अगल बगल में बैठे। राजकुमार ने राजकुमारी से चुपके से कहा—"देखो भी, आ गया हूँ।"

यह सुन राजकुमारी ने परदा हटाकर गौर-से देखा। पहिले तो उसने सोचा कि वह सपना देख रही थी क्योंकि भला उसका पिता, उसका विवाह उससे क्यों करेगा?

वह अपना आश्चर्य हाव-भावों में प्रकट न कर दे, यह सोचकर राजकुमार ने उससे कहा—"ऐसा दिखाओ, जैसे कुछ जानती ही न हो।" जिस तरह बदली के बाद सूरज आता है, उसी तरह राजकुमारी का दुःख हटा और उसके मुँह पर मुस्कराहट बन आई। उसके बाद दुल्हे और दुल्हिन ने बड़े मज़े में आपस में बातचीत की। नृत्य के समय में ही उन्होंने सोचा कि कैसे वहाँ से भाग निकला जाये।

"जाते समय, तुम अपने पिता से लकड़ी का घोड़ा माँगना। ज़िद करना कि उसको बिना लिये तुम ससुराल न जाओगी। डरायें धमकायें भी तो न डरना।" राजकुमार ने राजकुमारी से समझाकर कहा।

अगले दिन दुल्हिन को ससुराल भेजना था। राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी, राजमहल के द्वार पर, राजकुमारी को भेजने के लिए उपस्थित थे। राजकुमार और बराती जाने के लिए तैयार थे। राजकुमारी राजमहल में अपने पिता के पैरों पर पड़कर लकड़ी का घोड़ा माँग रही थी।

राजा को गुस्सा आया—"जल्लाद को बुलाकर अभी तुम्हारा सिर कटवा सकता हूँ। सम्भल कर रहो।" उसने लड़की को डराया भी।

राजकुमारी न डरी। "मैं जाऊँगी, तो उस घोड़े को लेकर ही, नहीं तो कहीं मर जाऊँगा।"

राजा को गुस्सा आया और फ़िक्र भी सताने लगी। उसे न सूझा कि क्या किया जाय? इतने में बाहर प्रतीक्षा करनेवाले कर्मचारियों ने आकर राजा से पूछा—"क्यों देरी हो रही है? क्या बात है?"

"यह पगली ज़िद कर रही है कि लकड़ी का घोड़ा साथ ले जाकर रहेगी।" राजा ने उनसे कहा।

उन लोगों ने कहा—"तो क्यों नहीं देकर भेज देते! यह भी कोई बात है!"

राजा को लकड़ी का घोड़ा देना पड़ा। उसके नौकरों ने लकड़ी का घोड़ा लाकर राजकुमारी को दिया। उसके बाद बराती विदा लेकर निकल पड़े।

यात्रा काफ़ी दिन तक चलती रही। परन्तु युवराज के सिपाही, हमेशा उन पर पहरा देते रहे। उनको कहीं भाग निकलने का लेशमात्र अवकाश भी न दिया। गम्यस्थान ज्यों-ज्यों पास आता गया, त्यों त्यों प्रेयसी प्रेमी की चिन्ता बढ़ने लगी। परन्तु आखिर राजकुमार को एक उपाय सूझा। उसने वह राजकुमारी को भी बताया।

यात्रा समाप्त हुई। युवराज के महल के द्वार पर पहुँचे। राजकुमारी ने मन्त्रियों से कहा—"गृह प्रवेश करने से पहिले हमारे देश में सोने की मुहरें बिखेरी जाती हैं। सात थालों में मुहरें लाइये। जो चाहें, वे उन्हें फिर उठाकर ले जा सकते हैं।"

मन्त्रियों ने सोचा कि शायद कोई ऐसा रिवाज़ होगा। मन्त्रियों ने सात थालों में मुहरें लाकर दीं। राजकुमारी ने उनको चारों तरफ़ बिखेर दिया। वे नौकर, जो तब तक उन पर पहरा दे रहे थे, मुहरों को बटोरने के लिए भागे।

इस गड़बड़ी में राजकुमार लकड़ी के घोड़े को ज़मीन पर रख, उन पर सवार हो गया, उसके पीछे राजकुमारी बैठ गई। राजकुमार ने जल्दी-जल्दी कीलें ढीली कर दीं। इससे पहिले कि वे जान सके कि क्या हुआ था कि लकड़ी का घोड़ा राजकुमार

और राजकुमारी को लेकर आकाश में अदृश्य हो गया।

इस बीच राजकुमार का पिता, इसी चिन्ता में था कि उसका लड़का कहाँ चला गया था। जब सवेरा का निकला लड़का घर वापिस न आया, तो उसे बढ़ई पर बड़ा गुस्सा आया और उसे उसने कैद में डल्वा दिया।

उसके बाद कई दिन बीत गये। सप्ताह भी बीते, पर राजकुमार वापिस न आया। कहीं वह मनहूस लकड़ी का घोड़ा उड़ते उड़ते समुद्र में न गिर गया हो, लोहे की मछली पर उसने सारे समुद्र को छान डालने के लिए कहा। राजमहल में तबसे कोई मनोरंजन न हुआ था, दावत न हुई थी। राजा ने अपने लड़के पर सारी आशायें छोड़ दीं। उसने बढ़ई को फाँसी पर चढ़ाने के लिए भी हुक्म दे दिया।

इन परिस्थितियों में राजकुमार अपनी पत्नी को लेकर घर पहुँचा। उसने अपने पिता से कहा—"पिताजी, इस लकड़ी के घोड़े से बढ़कर आश्चर्यजनक चीज़ इस संसार में कुछ नहीं है। मैं इसकी मदद से कितने ही देशों में घूमा, संसार में सबसे अधिक सुन्दर कन्या से विवाह करके घर वापिस आ रहा हूँ। उस बढ़ई को जितना भी दिया जाय, उतना कम है।"

लड़के के सारा वृत्तान्त सुनाने पर राजा को सन्तोष हुआ और पश्चात्ताप भी कि उसने बढ़ई को कैद में डलवा दिया था। उसने तुरत बढ़ई को छुड़वा दिया। उससे क्षमा माँगी और उसको बहुमूल्य उपहार भी दिये।

राजकुमारी और राजकुमार की फिर बड़े धूमधाम से शादी हुई। उसके बाद वे सुख से रहने लगे। (समाप्त)

फिर पूर्णिमा आई। भोजन के बाद बाबा आराम कुर्सी पर बैठे थे। बच्चे उनके चारों ओर बैठे थे।

बाबा ने नास सूँघी, नाक झाड़कर यह श्लोक पढ़ा—

रहस्य मात्मनो धीमान,
शत्रुभ्यो नप्रकाशयेत्
अन्यथा वंचितस्तभ्यै
चन्द्र वर्मेव राक्षसः।

"कहानी सुनाओ, कहानी, बाबा सुनाओ भी।" बच्चों ने कहा।

"क्यों नहीं पूछते कि इस श्लोक का क्या अर्थ है?" बाबा ने पूछा।

"अर्थ बताओ और कहानी भी सुनाओ।" बच्चों ने कहा।

"इस श्लोक का अर्थ है कि शत्रुओं को हमें कभी अपना रहस्य नहीं बताना चाहिए यदि हमने अपना रहस्य बता दिया तो हम भी वैसे ही ठगे जायेंगे जैसे कि चन्द्रवर्मा नाम का राक्षस ठगा गया था। समझे?"

राक्षस का क्या रहस्य है बाबा! उसने वह किसको बता दिया था? फिर अन्त में वह कैसे ठगा गया? नहीं बताओगे?" बच्चों ने प्रश्न बरसाये।

"थोड़ा सब्र करो। मैं सब बताऊँगा" बाबा ने कहा। फिर उसने धीमे धीमे यों कहानी सुनानी शुरू की।

कभी गोदावरी नदी के किनारे एक बड़ा जंगल था। उस जंगल में चन्द्रवर्मा नाम का राक्षस रहा करता था।

मालूम है, वह रोज कैसे पेट-भरा करता था। जंगल के रास्तों से जो कोई जाता, उसे पकड़ लेता उसके कन्धों पर जा

चढ़ता और उसे पासवाले तालाब के पास ले जाता। तालाब में नहाकर वह उस आदमी को निगल जाता।

समझे न! एक दिन एक ब्राह्मण चन्द्रवर्मा के रास्ते चला आ रहा था। तब क्या था! राक्षस उसके कन्धों पर जा बैठा, और उसको उस तालाब की ओर चलने के लिए कहा। वह बिचारा ब्राह्मण क्या करता!

वह ब्राह्मण मरता मरता राक्षस को ढ़ोकर चला।

चलते चलते ब्राह्मण ने एक विचित्र बात देखी, उसके कन्धों पर जो राक्षस बैठा था, वह होने को तो बड़ा खुरदरा और गन्दा-सा था, पर उसके पैर बड़े मुलायम थे। बिल्कुल कमल की तरह।

ब्राह्मण ने साहस करके राक्षस से पूछा—"भाई, तुम हो, तो इतने खुरदरे, पर तुम्हारे पैर क्यों इतने मुलायम हैं! क्या बात है!

राक्षस यह सुन खुश हुआ कि कोई उसके पैरों की प्रशंसा कर रहा था। "एक बात सुनो भाई, मैं कभी गीले पैरों से भूमि नहीं छूता। यह मेरा व्रत है। इसलिए ही मेरे पैर इतने कोमल हैं।"

फिर क्या था! इस तरह राक्षस का रहस्य मालूम हो गया।

दोनों तालाब के पास आये। राक्षस ने तालाब में घुसते हुए कहा—"ब्राह्मण, जब तक मैं न आऊँ, तुम यहीं रहना। स्नान और पूजा से निबट कर अभी आता हूँ।"

राक्षस ने जैसे कहा था वैसे किया, वह जानता था कि उसकी क्या गत होगी इसलिए ब्राह्मण जितनी तेज भाग सकता था, उतनी तेज़ भागा। क्योंकि राक्षस गीले पैरों से भूमि को छूता न था इसलिए यह सब देखता, वह तालाब में ही खड़ा रहा।

स्वर्ग नरक

इङ्ग्लेन्ड में एक धर्म प्रचारक रहा करता था।

जब कुछ वैज्ञानिक मरे तो उसको एक सन्देह हुआ। ये वैज्ञानिक स्वर्ग जायेंगे? या नरक? उन्होंने कभी भगवान का स्मरण न किया, इसलिए स्वर्ग में उनके लिए स्थान नहीं होगा। परन्तु उन्होंने कोई पाप भी न किया था। यही नहीं, उन्होंने संसार में कई तरह के उपकार भी किये हैं। इसलिए उनका नरक भेजा जाना भी अन्याय है। ये वैज्ञानिक मरने के बाद कहाँ गये होंगे?" सोचता सोचता वह प्रचारक सो गया। उसे एक सपना आया।

उसे स्वप्न में स्वर्गों में सबसे अधिक उच्च स्वर्ग दिखाई दिया। वहाँ उसने कुछ भक्तों को पहिचाना भी।

"मृत प्रसिद्ध वैज्ञानिक कहाँ रह रहे हैं?" उसने स्वर्ग पालकों से पूछा। उसे बताया गया कि वे पाताल में रह रहे थे। प्रचारक की इच्छा हुई कि स्वयं पाताल जाकर उनको देख आये; जब उसने पूछा कि यह कैसे सम्भव था, तो उसने बताया कि स्वर्ग और पाताल में रेल के यातायात के मार्ग थे। प्रचारक ने पहिली श्रेणी का टिकट खरीदा और रेल में सवार होकर निकल पड़ा। रेल एक-एक स्वर्ग से उतरती हुई, नरकों में जाने लगी।

ज्यों-ज्यों एक-एक नरक गुज़रता गया त्यों-त्यों प्रचारक के लिए यात्रा करना कठिन होता गया। रेल में से उसने बीभत्स, भयंकर दृश्य देखे, कर्कश रोदन सुना, असह्य दुर्गन्ध आई।

जब उसे मालूम हुआ कि आनेवाला स्टेशन अधः पाताल था, तो वह दुर्गन्ध और रोदन न सह सका। वह मूर्छित हो

रामतीर्थ

गिर पड़ा। उसने सोचा कि यात्रा पर यों निकलना उसकी गलती थी।

"अधः पाताल, अधः पाताल" के किसी के चिल्लाने से उसको होश आया। जब उसने आँखें खोल कर देखा, उसे लगा, क्या यही अधः पाताल है? असम्भव, इसे देखकर तो अत्युन्नत स्वर्ग मालूम होता है।" परन्तु साथ के यात्रियों ने उसे बताया कि वह ही अधः पाताल था। इतने में गार्ड ने आकर, उसका टिकट देखकर बताया—"आपको यहीं उतरना होगा।"

प्रचारक रेल गाड़ी से उतरकर चलने लगा। सब जगह उद्यान थे। सुगन्ध आ रही थी। ठंडी ठंडी बयार चल रही थी। यह अत्युन्नत स्वर्ग से भी अच्छा था।

वह यह सोच ही रहा था कि इसका क्या कारण था कि उसको एक परिचित वैज्ञानिक दिखाई दिया।

"यह सोच कि तुम पाताल में नाना कष्ट सह रहे होगे, मैंने उपदेश देकर, तुम्हें स्वर्ग भेजने की सोची और यहाँ आया। परन्तु यह तो स्वर्ग से भी अच्छा है। क्या कारण है?"

"अब ऐसा है, जब हम आये थे। तो हर जगह कूड़ा कर्कट, कीचड़, दलदल अंगारे उगलने वाले रेतीले टीले थे, बहुत भयंकर था। हमें कीचड़ के गढ़ों में उतारा गया। हमने उस कीचड़ के पानी से लोहा बनाया। उस लोहे से यन्त्र बनवाये। गढ़ों में खेतीबाड़ी की, टीलों में कूड़े कर्कट के ढेरों में भी हल चलाया। हमने अधः पाताल को भी स्वर्ग में परिवर्तित कर दिया। किस पदार्थ को किस तरह उपयोग किया जाना चाहिए अगर उस तरह उस वस्तु का उपयोग किया जाय, तो नरक भी स्वर्ग हो जाता है।" वैज्ञानिक ने कहा।

हमारे देश के आश्चर्यः

रामेश्वर

हमारे देश के पुण्यस्थलों में अग्रणी हैं काशी और रामेश्वर। उनमें रामेश्वर का मन्दिर, हमारे देश के आश्चर्यों में है। द्राविड़ शिल्प कला का उदाहरण इससे अच्छा कहीं नहीं है। दक्षिण भारत के सिरे में, एक द्वीप में, कहा जाता है लंका के राजा ने इस मन्दिर को बनवाया था। यह भी बताया जाता है कि इसको बनवाने में ३५० वर्ष लगे थे।

इसके प्रांगण की लम्बाई १००० फीट है। चौड़ाई ६५० फीट। मन्दिर के मुख्य द्वार की ऊँचाई १०० फीट है। इस मन्दिर में, शिल्पालंकृत स्तम्भों से बना चार हजार फीट का मण्डप है। शिवभक्त रावण को मारने के बाद, कहा जाता है, राम ने यहाँ आकर भगवान की पूजा की थी। यहाँ शिव का नाम रामनाथ स्वामी है।
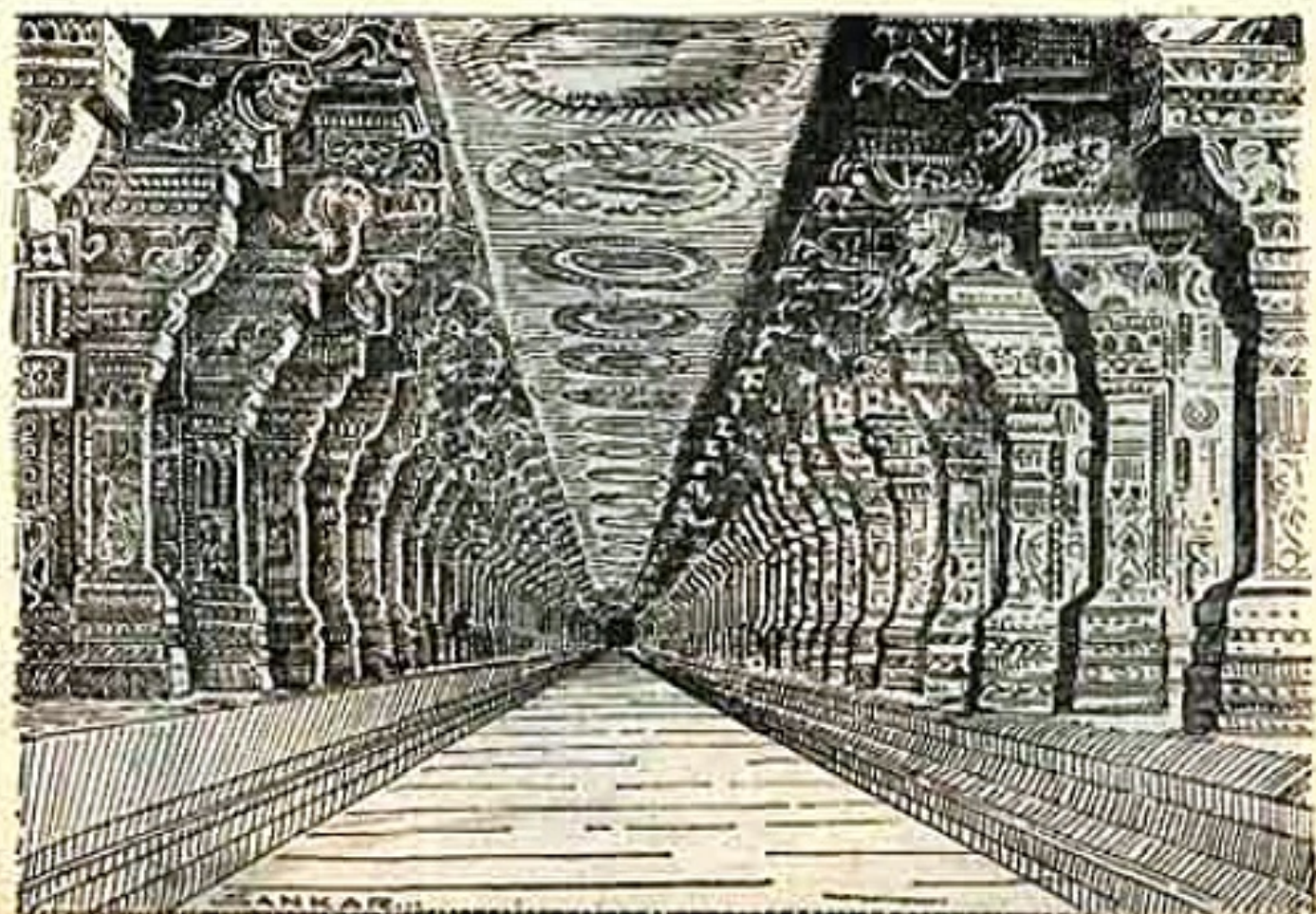
अन्तिम पृष्ठ

उस दिन युद्ध के आरम्भ होते ही कर्ण ने युधिष्ठिर से युद्ध किया। उसको विरथ कर दिया। युधिष्ठिर भागने लगा। कर्ण ने उसको पकड़ना चाहा, पीछा किया। पर उसको कुन्ती को दिया हुआ वचन स्मरण हो आया। उसने उसका पीछा करना छोड़ दिया। उसने युधिष्ठिर से कहा—"तुम क्षत्रिय नहीं हो। तुम्हें तो हवन आदि करना चाहिए। यदि युद्ध करनेवाले क्षत्रिय होते तो क्या तुम मृत्यु के भय से यों भागते।" यह सुन भीम को बड़ा गुस्सा आया। उसने कर्ण पर हमला किया। शल्य ने कर्ण से कहा—"देखो! भीम यम की तरह आ रहा है। अब उसका मुकाबला करना ठीक नहीं है।" परन्तु कर्ण ने शल्य से कहा—"यदि मैंने अब भीम को हराया या मार दिया, तो अर्जुन मुझ पर हमला करेगा, तब मेरी इच्छा पूरी होगी।

परन्तु कर्ण की इच्छा पूरी न हुई। भीम ने कर्ण को रथ में मूर्छित कर दिया। शल्य रथ दूर ले गया। भीम विजय के अभिमान में कौरवों को मारने लगा। विवित्स, क्राथ, सन्द, उपसन्द आदि धृतराष्ट्र के कुछ पुत्र भीम के हाथ मारे गये।

दुर्योधन को सन्तुष्ट करने के लिए अश्वत्थामा ने घोर प्रतिज्ञा की। उसने कहा कि जब तक धृष्टद्युम्न को न मार दूँगा; कवच नहीं उतारूँगा। वह धृष्टद्युम्न को मार भी देता, यदि ठीक समय पर अर्जुन आकर उसकी रक्षा न करता।

कर्ण उस दिन शाम को युधिष्ठिर से फिर लड़ा। युधिष्ठिर और उसकी रक्षा करने के लिए नियुक्त नकुल और सहदेव बुरी तरह आहत हुए। इस विषम परिस्थिति में शल्य ने कर्ण से कहा—"इस युधिष्ठिर से लड़ने से क्या फायदा! अर्जुन से लड़ो। यही नहीं दुर्योधन भीम से लड़ रहा है। आफ़त में है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।"

युधिष्ठिर शिविर में पहुँचकर, जो बाण शरीर में लगे थे, उनको तो निकाल सका, पर जो मन में लगे थे, उनको न निकाल पाया।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

जुलाई १९६१ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ७ मई '६१ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता,
चन्दामामा प्रकाशन,
वड़पलनी, मद्रास-२६

मई – प्रतियोगिता – फल

मई के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो : **मैं हूँ घर की तितली प्यारी !**

दूसरा फ़ोटो : **हम उपवन की पनिहारी !!**

प्रेषक : **ध्रुवकुमार सुराणा,**
फतहपुरा-उदयपुर (राजस्थान)

चित्र-कथा

एक दिन गड़रिये का लड़का एक मछली को बंसी में लगाकर, उसे नहर में रख, दास और वास के पास आया। उसने शेखी मारी कि मछली पकड़ने में भी माहिर था। सब नहर के पास गये। गड़रिये ने दास और वास को बंसी दिखाई। फिर बड़ी मछली पकड़ने के लिए मन्त्र जपता, वह कुछ दूर गया। दास और वास ने बंसी में एक बड़ी ईंट बाँध दी। जब गड़रिये ने आकर बंसी निकाली, तो ईंट निकली। दास और वास इतना हँसे कि उनका पेट ही फूल गया।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

बसंती
LUX
हरा
LUX
नीला
LUX
गुलाबी
LUX
'मेरा मनपसंद
लक्स
इंद्रधनुष के
चार रंगों में
और सफ़ेद भी!'
वहीदा रहमान
कहती हैं
LTS. 81-X29 HI
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन